

THE BOOK WAS DRENCHED

pages missing book.

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180590

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--23--44-69--5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *H83/R14B* Accession No. *H3115*

Author *21819 210122.*

Title *ఏమిటే 20382: 1955.*

This book should be returned on or before the date
last marked below.

बोलते खँडहर

★

डॉ० रांगेय राघव

किताब महल इलाहाबाद : बम्बई

प्रथम संस्करण
१९५५
लेखक
डॉ० रांगेय राघव
प्रकाशक
किताब महल, इलाहाबाद
मुद्रक
मगन कृष्ण दीक्षित
दीक्षित प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

प्रस्तुत उपन्यास मैंने १९३७ ई० में लिखा था । इसका कथानक विदेशी साहित्यों में से प्रभावित है किन्तु इतने वर्षों के उपरान्त अब उसे स्पष्ट बताना मेरे लिये असम्भव है । मेरे साहित्य के विकास में इस पुस्तक का अपना महत्त्व है । अपनं आलोचकों और मित्रों के आग्रह ने मुझे इसे प्रकाशित कराने को विवश किया है । आशा है पाठक इसे अपना कर मुझे आभारी बनायेंगे ।

रांगेय राघव

उस सूनी सराय में पहुँचकर चारों लड़के थककर बैठ गये। रात अँधेरी थी और तूफानी हवा सनसना रही थी।

खांडेकर सराय को देख कर चौंक उठा, क्योंकि चारों तरफ़ खंडहर ही खंडहर नजर आ रहे थे।

उसने एक कोठरी को साबूत पाया। उसी समय मशाल जलाये हुए एक आदमी इधर आया और पुकार उठा, 'अरे कौन है वहाँ !'

धीरूमल ने कहा, 'रास्ता भूल गये हैं हम लोग।'

अभी सुरेश्वर और मोहन सँभल कर भीतर आ भी नहीं पाये कि वह आदमी डरावनी हँसी हँसा।

उस हास्य को सुन कर चारों एक दूसरे के पास आ गये।

'यहाँ मत ठहरो,' उसने पुकार कर कहा, 'जानते हो यह जगह कौन सी है ?'

'नहीं।' तुम कौन हो !'

'मैं गाँव का चौकीदार हूँ। तुम लोग कौन हो ?'

'हम पढ़ते हैं शहर में। शिकार खेलने आये थे, तभी तूफ़ान आ गया, और रात हो गई,' मोहन ने चिल्ला कर कहा।

'अच्छी बात है,' उस आदमी ने पुकारा, 'मेरे साथ आओ। अगर तुममें से कोई भी यहाँ रहा, तो वह मर जायेगा।'

चारों डरे।

'क्यों ?'

'यहाँ भूत रहते हैं।'

'भूत !' खांडेकर उठ कर हँसा।

'हँसते हो,' उस आदमी ने पास आ कर कहा, 'जानते हो पहले यह इस इलाके की खूब चलती हुई सराय थी।'

‘चौकीदार हो !’ की आवाज़ गूँज उठी ।

‘आहो !!’ चौकीदार चिल्लाया ।

इसी समय सामने के रास्ते से कुछ आदमी हाथ में मशालें लिये आकर वहाँ इकट्ठे हो गये ।

चौकीदार ने कहा, ‘इनसे पूछ लो ।’

वे गाँव वाले थे । एक ने कहा, ‘बाबू ! पहले यह अच्छी सराय थी । लेकिन बाद में कहते हैं यहाँ एक तंत्र-मंत्र जानने वाला आया । उसके साथ एक मिट्टी का घड़ा था । वह देश-देश से नई-पुरानी रुइयों को पकड़ कर उसमें भर कर लाया था । न जाने किसकी ग़लती से वह घड़ा यहाँ फूट गया ।’

‘फिर ?’ धीरूमल ने पूछा ।

‘फिर क्या ? भूत छूट गये ।’

खांडेकर फिर हँसा ।

उसने कहा, ‘हम कहीं नहीं जायेंगे । तुम हमारे पास यहीं ठहर जाओ तो अच्छा हो । आज देख लेना भूत-वूत कुछ नहीं होता ।’

‘बापरे न !’ एक साथ आवाज़ उठी ।

मोहन काँप रहा था । वह जोर से चिल्ला उठा और भीड़ में जा खड़ा हुआ । उसने कहा, ‘नहीं, नहीं, तुम लोग मुझे अपने साथ ले चलो । मैं यहाँ अकेला नहीं रह सकता ।’

‘कायर,’ खांडेकर ने कहा ।

आखिरश चारों गाँव में आ गये ।

चौकीदार ने उन्हें एक मकान में ठहरा दिया ।

जब वे लोग वहाँ लेट गये तब खांडेकर ने कहा, ‘क्या मोहन ! तू चिल्लाया क्यों था ?’ बातें अँगरेज़ी में होने लगीं ।

मोहन ने धीरे से कहा, ‘क्या तुमने नहीं देखा ?’

‘क्या ?’

‘वहाँ तो बदमाशों के डाके का अड्डा है ।’

‘तुम्हें कैसे पता चला ?’ खांडेकर ने पूछा ।

धीरूमल ने कहा, ‘बनने लगा न जासूस !’

लेकिन सुरेश्वर नहीं बोला ।

‘तू क्यों चुप है ?’ धीरूमल ने पूछा ।

‘इसलिये कि मुझे भी यही शक है ।’

‘लेकिन शक की कुछ बिना भी है ?’

‘तुमने सुना नहीं था,’ मोहन ने कहा, ‘शुरू में चौकीदार हँसा था, वह एक डरावनी हँसी थी ।’

‘सब बेकार की बात है,’ खांडेकर ने कहा ।

‘होने दो,’ मोहन ने कहा, ‘अगर वहाँ डाके वाले न भी हों, तो भी वहाँ भूत जरूर हो सकता है, क्योंकि मैं भूतों में विश्वास करता हूँ । और मैंने ऐसी कई कहानियाँ पढ़ी हैं, जो कि यह साबित करती हैं कि भूत होता जरूर है ।’

खांडेकर ने कहा, ‘अगर ऐसा है तो यार ! एक कहानी सुना । यह भयानक रात ! इसका इससे बढ़ कर और उपयोग भी क्या हो सकता है कि हम ऐसी ही कहानियाँ दुहरायें ।’

मोहन ने चौकीदार को पुकारा । वह चला गया था । मोहन ने लालटेन की रोशनी तेज़ की, जो कि चौकीदार दे गया था और उसने जेब से एक पुलिंदा निकाला ।

‘यह क्या है ?’ धीरूमल ने पूछा ।

‘यह भूतों की कहानियाँ हैं,’ मोहन ने कहा, ‘हिन्दी में लिखी हैं ।’

बाहर हवा चिल्ला रही थी, भयानकता से हँस रही थी । मोहन यढ़ने लगा :—

सावन की रात अपने घटाटोप अधियारे को लिये सनसना रही थी । दूर कभी पपीहरा बोलता, कभी भींगुर भनकारने लगते और फिर सूने बगीचे में हवा एक हल्की सी कँपकपी भर कर पेड़ों को हिला देती । अंधेरा पेड़ों के नीचे ऊँघते भालुओं की तरह सो रहा था । पेड़ों के काले तने ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे कोई घना धुँआ था जो हरियाली बन कर ऐसा रङ्ग ले लेता था जैसे आस्मान से कोई अजीब छाया गिर रही थी, या कभी कभी चमकती बिजली की झॉई नीले पर व्याप कर हरी-हरी छाया डाल देती थी । उस बाग में वह भवन सुनसान सा खड़ा था ।

मालती देवी पिछवाड़े के कमरे में बैठी थी और चुपचाप बैठी-बैठी लालटेन के प्रकाश में आलोकित दीवारों पर आँखें स्थिर किये कुछ सोच रही थी । अचानक उनकी निगाह खुली खिड़की पर पड़ी । उन्होंने देखा कि किसी ने नीचे से हाथ उठाकर जैसे खिड़की की चौखट पर रख दिया था । शायद वह ऊपर चढ़ आना चाहता था । क्षण भर वे सोचती रहीं और उन्होंने देखा कि उँगलियों ने फैल कर, मुड़ कर चौखट को पकड़ रखा था । हाथ को देख कर लगता था कि वह किसी अघेड़ आयु के व्यक्ति का हाथ था, और उस हाथ में एक हल्का सा गोरापन

या। कौन हो सकता था वह ! मालती के दिमाग में आया कि कुछ ही दिन पहले निकट में ही चोरी हो चुकी थी और वे हठात् 'चोर ! चोर !' कह कर चिल्ला उठीं ।

ऐसा लगा जैसे रखने वाले ने अपना हाथ धीरे से हटा लिया ।

मालती देवी की वह चौख उस सन्नाटे में गूँज उठी । दौड़ कर चंदो ने प्रवेश किया ।

‘मालकिन ! मालकिन !’ उसने घबराकर पूछा, ‘आखिर हुआ क्या ?’

चन्दो उनकी खास महाराजिन थी । उसकी आयु लगभग पैंतालीस वर्ष थी और मालकिन ने उस पर विशेष कृपा कर रखी थी । मालकिन पतली थी और बयालीस साल की होने पर भी उनका एक भी बाल सफ़ेद नहीं था । सुते हुए गाल थे जिन पर अच्छी खूराक को वजह से अभी तक चमक थी । बल्कि वे पढ़ी-लिखी होने के नाते अपने कों करीने से भी रखना पसंद करती थीं । उनकी आदत थी कि वे धीरे-धीरे बातें करें । चन्दो को यही याद नहीं था कि कभी उन्होंने उसको ऊँचा स्वर भी सुनाया हो । वह इसी हैरत में थी कि आज यह आतंकित चीत्कार हुआ ही क्यों; मालकिन कुर्सी पर बैठ गई थीं । फिर गम्भीर हो गई थीं ।

‘चन्दो !’ मालकिन ने कहा, ‘बाग में कोई घुस आया है । जाकर महादेव से कह कि वह रोशनी लेकर उसको ढूँढे और पुलिस में खबर कर दे ।’

‘पर था कौन ?’

‘हाथ !’

‘हाथ’, चन्दो ने चौंककर कहा, ‘तो क्या आदमी नहीं था ?’

मालकिन हँसी और उन्होंने कहा, ‘आदमी था तभी तो हाथ था ! पगली ! वैसी गँवारिन की सी बात करती है ।’

चन्दो लज्जित हुई । उसने कहा, ‘मैं गँवारी तो हूँ मालकिन ।’

जैसा आपने कहा वैसा ही मैंने मान लिया। जाती हूँ मैं, महादेव से कहती हूँ।’

मालकिन को छोड़ कर चन्दो बाहर गई। उसने पुकार कर महादेव से कहा, ‘अरे देख भइया महादेव !’

मालकिन फिर बैठ कर सोचने लग गई।

महादेव ने रामा कहार के साथ सारा बाग ढूँढ़ डाला। वह जब लौटा तो उसने कहा, ‘मालकिन ! वहाँ तो कोई नहीं है।’

‘नहीं होगा,’ मालती देवी ने कहा, ‘भाग गया होगा। चोर के पाँव ही कितने !’

महादेव लौटने लगा। मालती ने कहा, ‘बाहर का फाटक बन्द कर दिया है।’

‘हाँ मालकिन, वहाँ चौकीदार है।’

‘ठीक है।’ वे संतुष्ट हो गईं और उन्हें यह सोच कर अच्छा लगा कि पुराने समय के लोग कितने बुद्धिमान थे जिन्होंने अपनी चहार-दीवारी इतनी ऊँची बनवाई थी कि दो आदमी एक दूसरे पर खड़े होकर भी उसे कूद नहीं सकते थे। ऊँची दीवारों के काफी ऊपर केवल विशाल वृक्षों की खड़खड़ाती डालें दिखाई देती थीं और उन तक कोई भी पहुँच नहीं सकता था।

सहसा आवाज हुई ‘हूँहूप, हूँहूप’। डकराती और गूँजती आवाज सुन कर वे चौंक उठीं।

महादेव ने देख लिया। कहा, ‘मालकिन वह कुछ नहीं। लंगूर बोल उठता है कभी-कभी।’

‘तूने,’ मालतीदेवी ने पूछा, ‘खिड़की के नीचे देख लिया था !’

‘हाँ मालकिन।’

‘किसी के पाँवों के निशान थे ?’

‘नहीं मालकिन, वहाँ तो आदमी पहुँच ही नहीं सकता।’

‘क्यों ?’

‘मैंने क्यारी के फूलों को घेरने के लिए अभी शाम को वहाँ काँटे लगा दिये थे और उनका रास्ता नहीं बना पाया था क्योंकि बूँदें आ गई थीं और फिर अंधेरा छा गया था। इस बख्त देखा, काँटे ज्यों के त्यों हैं। किसी ने उन्हें हटाया ऐसा तो नहीं लगता। उसके आगे गमले रखे हैं। वे भी वैसे के वैसे ही घरे हैं।’

‘तो भीतर ही तो कोई नहीं बैठा है ?’

‘बैठा कैसे रहेगा मालकिन ! रामा ने बैटरी डालकर देखा था।’

रामा की ओर मालकिन ने देखा तो वह भँप गया क्योंकि उसने चलते वक्त टॉर्च खरीदी थी तो उन्होंने पूछा था, ‘क्या करेगा टॉर्च लेकर ?’ पर उसका नया शौक था। वह ले ही आया था।

जब महादेव और रामा चले गये तब चंदो थाल सजा लाई। मालती देवी बातें करती रहीं और धीरे-धीरे खाना खाती रहीं। खाना खाकर वे उठीं और बगल के कमरे में आ गईं जिसकी खिड़कियों में लोहे के जंगले लग रहे थे। एक ओर उनका पलंग बिछा था जिस पर वे लेट गईं और बड़े लैम्प की रोशनी में उन्होंने वह पत्रिका खोली जिसे वह अपने साथ ले आईं थीं। चंदो रसोई में चली गई थी।

कुछ देर बाद उनको झपकी सी आ गई। अचानक ही बीच के कमरे के दरवाजे पर किसी के जल्दी-जल्दी थपथपाने की आवाज़ आई। मालती देवी ने पुकारा, ‘चंदो !’

चंदो उस समय खाना खाकर उठी ही थी। उसने कहा, ‘आई मालकिन।’

‘अरी देख तो चौकीदार क्या कर रहा है ?’

‘अभी लीजिये मालकिन,’ कहकर चन्दो बढ़ी और पुकारा, ‘महादेव !’

रामा बरामदे में था। उसने कहा, ‘महादेव चौकीदार के पास गया है।’

इस समय थपथपाहट और अधिक मुनाई देने लगी थी । रामा उठा और उसने द्वार खोला ।

‘कोई तो नहीं है,’ उसने बैटरी लगाकर देखा और मुड़कर कहा । ज्योंही वह दरवाजा बंद करने लगा वह पीछे झुक गया ।

‘क्या हुआ रे !’ चंदो ने पूछा ।

‘किसी ने मुझे धक्का दिया है ।’

‘तेरा सिर ! हवा है,’ चंदो ने कहा, ‘चल बंद कर दे ।’

रामा ने दरवाजा बन्द कर दिया मगर वह कुछ सताया हुआ सा था ।

‘ले फिर दरवाजा किसने खड़खड़ाया !’ रामा की आवाज़ अटकती हुई निकली ।

चंदो उसके स्वर की गंभीरता सुनकर कुछ घबराई सी खड़ी रह गई ।

‘अरे कौन है ?’ मालती देवी ने पूछा ।

कोई उत्तर नहीं पाकर वे बाहर आईं और उन्होंने झुँझलाए स्वर से कहा, ‘अरे बोलते क्यों नहीं ?’

जब वे निकट आईं तो चन्दो को चैन आया । कहा, ‘मालकिन ! कोई नहीं है ।’

‘तो फिर दरवाजा किसने थपथपाया ।’

‘पता नहीं ।’

‘आखिर आज कोई घुस आया है ।’

‘कौन मालकिन !’

‘चोर,’ मालकिन ने दृढ़ता से कहा ।

‘लेकिन,’ रामा ने कहा, ‘चोर आयेगा कहाँ से । बाहर महादेव है, चौकीदार है और दरवाजा बंद है ।’

आकाश में बादल टकराये और कौंध लरज उठी ।

‘और फिर चोर क्या थपथपी देकर आयेगा मालकिन ?’ कहते हुये

चन्दो हठात् चुप हो गई ! उसके चेहरे पर पीलापन आ गया था । मालती देवी कांशिश करने लगी कि वे उसे नहीं समझी हैं, परन्तु एक अज्ञात भय उनके भीतर भी भर गया । वे उसे दिखाकर अपनी कमजोरी नहीं दिखाना चाहती थीं । वे अपनी पलंग की ओर लौट गईं । चन्दो और रामा एक दूसरे का मुँह देखते रहे । परन्तु बाहर फिर यथ्यपाहट की आवाज़ सुनाई दे रही थी । किसी ने भी उस समय दरवाज़ा खोलने की हिम्मत नहीं थी ! वे दोनों आतंकित से खड़े थे । अंत में सुनाई दिया, 'रामा ! हो रामा !'

रामा का होश लौटा ।

वह बढ़ा ।

चन्दो ने उसका हाथ पकड़ लिया ।

'क्या है ?' उसने पूछा ।

'ठहर, ठहर ! रात की बेला है । तीन आवाज़ से पहले नहीं बोलना चाहिये । क्या जाने कोई भूत-परेत हो !'

परन्तु अब भूत की आवाज़ स्पष्ट ही महादेव की आवाज़ बनकर सुनाई दे रही थी ।

'अरे खोलता क्यों नहीं । क्या सो गया है ? कमबख्त को नींद तो कुम्भकरण की सी आती है ।'

'अरे,' रामा ने हाथ छुड़ाकर कहा, 'महादेव है ।'

उसने द्वार खोला तो देखा महादेव खड़ा है ।

'क्यों रे दरवाज़ा क्यों नहीं खोलता था ?'

चंदो और रामा ने एक दूसरे की ओर रहस्य भरी दृष्टि से देखा ।

जब भीतर जाकर तीनों बैठे और रामा ने किस्सा सुनाया तो महादेव ठठा कर हँसा । उसने कहा, 'कमाल करतै हो यारो । और चोर हुआ तो अपना क्या लेगा । फोलादो हवेली है । इसमें से आदमी घुसेगा किधर से !

अभी उसकी बात समाप्त नहीं हुई थी कि फिर द्वार के थपथपाने की आवाज़ आई ।

‘कौन है ?’ महादेव चिल्लाया ।

कोई उत्तर नहीं आया ।

मालती देवी की नींद फिर उच्छट गई । वे फिर उठ कर आईं ।

‘अरे सोते क्यों नहीं ?’

उनका यह कहना था कि आकाश में बड़ी जोर से बिजली ऋङ्की और क्षण भर को ऐसा लगा कि वह सारा भवन हिल उठा । फिर बिजली गिरी, गिरी कि छाती में घूँसा सा लगा और फिर आकाश ने साँय-साँय करके लंबी-लंबी सी साँसें खींचीं जिसके अंत में कोई रात्रि पक्षी बोल उठा ।

कोई नहीं बोला । मालती देवी ने स्पष्ट सुना कि कोई द्वार थपथपा रहा है और अब की बार सदर दरवाज़े से नहीं, पिछुवाड़े के दरवाज़े से यह आवाज़ आ रही है ।

और अबकी बार वे सब भयभीत हो उठे । कोई भी एक दूसरे से नहीं बोला । केवल पथराई आँखें एक दूसरे को देखने लगीं । बाहर हवा जोर से खिलखिला उठी जिसको सुन मालती देवी के रोंगटे खड़े हो गये । महादेव अब हनुमान चालीसा को जल्दी-जल्दी बोल रहा था, किंतु उसकी आवाज़ लड़खड़ा जाती थी । सारा शून्य जैसे एकदम स्तब्ध हो गया था । सन्नाटा एक मोटी पारदर्शी काँच की तह की तरह घना होने लगा था और अचानक ही सबने फिर सुना । जैसे कोई अब पश्चिम की खिड़की पर थपथपा रहा था ।

उधर चंदो की दृष्टि गई तो वह चीत्कार कर के मालकिन से लिपट गई । वह उनके बड़प्पन का ध्यान भी भूल गई और मालती देवी ने भी नहीं रोका । उन्हें चंदो के, जीवित मांस के, स्पर्श से शक्ति मिली । ऐसा सदैव होता है । इंसान की आवाज़ भी अंधेरे में डरती है परंतु उसका स्पर्श सात्वना देता है । मालती देवी ने देखा खिड़की की चौखट पर

वही हाथ, अघेड़ आदमी का हल्का सा गोरापन लिये हुआ हाथ, रखा था, जैसे कोई नीचे से ऊपर चढ़ना चाहता था। उन्होंने देखा और उनके साथ ही महादेव और रामा ने भी देखा। रामा ने शीघ्रता से उस पर अपनी टॉर्च की रोशनी फेंकी। वह हाथ और भी साफ़ दिखलाई दिया। उँगलियों ने फैल कर, मुड़ कर चौखट को पकड़ रखा था।

और देखते ही देखते किसी ने जैसे हाथ पीछे खींच लिया। हाथ के जाते ही सबने भय से एक दूसरे को देखा तो देखते ही रह गये।

चंदो भगवान का नाम ले रही थी। अब हाथ न होने पर भी भय से ऐसा लग रहा था जैसे खिड़की के उस शीशे पर जोकि पूर्व की ओर था वही हाथ धीरे-धीरे फिर रहा था, केवल हाथ, और कुछ नहीं, जिसकी हथेली और उंगलियाँ फैल गई थीं।

‘वह वह.....’ चंदो ने कहा।

टॉर्च डाल कर देखा तो वह हाथ वहाँ सचमुच था, धीरे-धीरे कोई उसे उस शीशे पर घुमा रहा था, धीरे-धीरे, निश्चित। टॉर्च के आलोक के पड़ते ही वह हाथ जैसे किसी ने नीचे की ओर खींच लिया।

मालती देवी ने तुरंत टॉर्च रामा से छीन ली और खिड़की की ओर तेज़ी से गई। उन्होंने खिड़की खोल दी? वे इस शीघ्रता में थीं कि बाहर भाँक कर देखें। आखिर यह कौन था जो सारी रात खराब करने आया था। उनके दिमाग में तेज़ी से दौड़ गया कि वे जो पिस्तौल सिरहाने रख आई हैं, उसे न लाकर उन्होंने भूल ही की है।

परंतु खिड़की खोल कर अभी वे झुक भी नहीं पाईं थीं कि उन्हें लगा वे पीछे की ओर झुक गई हैं!

वे समझ नहीं सकीं। उन्होंने फुर्ती से खिड़की बंद कर दी। और फिर वे अपने आप बड़बड़ा उठीं, ‘यह मुझे किसने धक्का दिया।’

रामा की हड्डियाँ काँप उठीं। उसे वही धक्का लगा चुका था!! उसने चंदो की ओर देखा जो उस समय उसकी बात सुन कर गंभीर नहीं हुई थी। परंतु इस समय वह अधर्मिणी कातर आँखों से देख रही

थी। महादेव का स्वर उठ रहा था। वह हनुमान चालीसा जल्दी-जल्दी दुहरा रहा था।

लालटेन की रोशनी में कमरा बिल्कुल स्तब्ध था, ऐसा स्तब्ध कि वे एक दूसरे की साँसें सुन सकते थे। रामा ने ही हिम्मत बाँध कर कहा, 'मालकिन !'

मालती देवी चौंकी। उन्होंने अपने को सुस्तियर करने का प्रयत्न किया ! बहुत प्रयत्न करके भी वे अपने को हिम्मत बाँधा नहीं सके। चारों उसी कमरे में बैठ गये। मालकिन सामने के सोफा पर बैठ गईं और तीनों उनके सामने ही बैठे रहे। भोर की प्रतीक्षा थी, कभी-कभी वह हाथ थपथपा उठता था, क्योंकि अब सब खिड़कियाँ बंद थीं।

महादेव के मुँह से इस समय भजन सुनाई दे रहा था, जो मालती देवी के अशांत हृदय को आज बहुत बड़ा ढॉटस दे रहा था।

भोर हो गई। आकाश में मेघ अब भी मौले-मौले से छाये हुए थे। पेड़ पत्ते भीगे हुए थे। मालती देवी सोफे पर ही सो गई थीं। चंदो, रामा, और महादेव वहीं कालीन पर पड़े सो गये थे। सब उठे तो ऐसा लगा कि जैसे एक दूसरे को देखकर भँप रहे थे। चंदो चाय बनाकर जब लाई तब चाँकीदार आता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे मज़दूर थे जिनके सिर पर बक्स और बिस्तर रखा था। मालती देवी के पति नीलाम्बर पंत अपनी अचकन के बटन खोले हुए और मुँह में सिगार दबाये, बाँये हाथ की छड़ी मस्ती से घुमाते हुये आते हुए दिखाई पड़े। मालती ने उन्हें देखा तो उनको लगा कि वे पचास वर्ष के होने पर भी तीस बरस के से लगते थे। वे मस्त थे और किसी बात का अधिक विचार नहीं करते थे।

वे आकर बैठे तो मालती देवी ने प्रणाम किया। वे प्रसन्न से बैठ गये और उन्होंने मालती को अपने ही सोफे पर बिठा लिया। चन्दो चाय लाई, बोली, 'बड़े भाग मालिक आ गये। मैं तो रात मर ही गई थी।'

मालती देवी बात को दूसरे दंग से समझाना चाहती थीं। चन्दो के

कहने पर उन्हें सारा किस्सा सुनाना पड़ा। चाय पीते हुए नीलाम्बर पंत ने ठहाका लगाया और इस जोर से हिले कि थोड़ी सी चाय उनके ठीले पायजामे पर भी गिर गई। मालती को अपने पति का वह रूप सदैव बहुत अच्छा लगता था, परन्तु उस समय उन्हें आतंक-सा छा गया जैसे वे यह अनुभव कर रही थीं कि उनके पति अनजाने ही उस हाथ को आज रात फिर लौटने की दावत दे रहे थे।

‘ठीक है,’ उनके पति ने कहा, ‘बमुश्किल तो मुकदमेबाज़ी से यह भवन मिला है और अब तुम्हें इसमें कोई पुराने जमाने की शाहजादी की उँगलियाँ दिखाई देने लगीं। अरे यह इस चौकीदार का कोई खेल मालूम देता है !’

मालती देवी ने जब उन्हें समझाने का प्रयत्न किया तो उन्होंने अपने लड़के की बात शुरू कर दी, कि वे उससे हॉस्टल में मिल आये हैं। ठीक ही पढ़ता-लिखता है। फिर वे बताने लगे कि इस भवन में रहने से एक लाभ यह हुआ कि वे अपनी खेती की देखभाल खुद कर सकेंगे। उनको अपनी नई ज़मींदारी का गर्व था। पहले वे व्यापारी थे। रुपया बचा कर जब वे तैयार हो गये तो उनको अपने मैनेजर का किया हुआ ग़बन पता चला और उन्होंने उसकी ही जायदाद हड़प ली। परन्तु मैनेजर उस दिन अफ़सोस में नहीं था। कहते हैं उसने किसी से कहा था कि वहाँ जाने तो दो, आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। परन्तु उन्होंने कोई चिंता नहीं की। अपने पुत्र कमल को पढ़ने भेज दिया और काराग़र का इंतजाम करके गाँव सँभालने आ गये। मालती देवी की बात आई गई हो गई।

किंतु जब रात आई, हाथ का खेल फिर प्रारम्भ हो गया। वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। महादेव द्वार खोलने से डरता था। चन्दो घर-घर काँपती थी। रामा बार-बार टार्च जलाता था। नीलाम्बर पंत ने कई बार पुकारा। पिस्तौल भी चलाई। परन्तु कोई नहीं मरा। यथयथाहट फिर भी सुनाई देती थी। चौकीदार अपनी जगह बैठा था और फ़ायद के

इधर नहीं आता था। नीलाम्बर पन्त का क्रोध जैसे-जैसे बढ़ता, मालती देवी के मुख पर भय की छाया बढ़ती जाती। पुकार के उत्तर में केवल थपथपाहट सुनाई देती थी। और फिर खिड़की के काँच पर हथेली-सी दिखाई देती और फिर कुछ देर बाद वह हाथ खींच लिया जाता।

इसके बाद नीलाम्बर पन्त ने प्रातःकाल पंडित बुलवाकर सारे घर में प्रोक्षण करवाया, किया तो इतना कि एक दूसरे पंडित को तो अनुष्ठान करने की ही सहायता दे दी, परन्तु हाथ था कि रोज़ रात को उसकी आगमनी होती और वही थपथपाहट जो पहले धीमी-धीमी-सी सुनाई देती वह अब बढ़ने लगी, ऐसे कि जैसे खोलो जल्दी खोलो। परन्तु फिर वह हाथ धीरे से हट जाता।

धीरे-धीरे उस थपथपाहट की आदत हो गई। परन्तु भादों की आँधेरी जब गहराई और हर ताल में पानी भर गया और उन पर खड़े विशाल वृक्षा की छाया में पानी काले काँच की तरह छलकने लगा, जिसमें और भी काली छाया बन कर पेड़ों के तने झलकने लगे, और पट बीजनों की उड़ान एक हल्की छाया को उजागर करने लगी, जब आसमान के कड़कते दिल की आवाज धरती की हरियाली में नाड़ी बन कर बजने लगी, तब ठीक आधी रात के वक्त वह थपथपाहट सदर दरवाजे पर सुनाई दी। अब जो खँसा था वह यह कि थपथपाहट हुआ करे, लोग सोते रहते थे। कोई बोलता नहीं था।

परन्तु यह आवाज स्पष्ट थी, और दिना से ज्यादा तेज थी। और लगभग डेढ़ घंटे तक अनवरत होती रही।

नीलाम्बर पन्त अपने पलंग पर उठ कर बैठ गये और उन्होंने सस्वर गायत्री मंत्र पढ़ना शुरू किया। मालती देवी का याद आया कि जब उनके समुरजी जीवित थे तब जरूर उनके पति इस स्वर से संध्या-वंदना किया करते थे और उनके समुरजी का सिर बेटे के भक्ति-भाव का देखकर प्रसन्नता से हिला करता था। इसके अतिरिक्त उनके पति में कोई भक्ति-भावना हो, ऐसा तो नहीं था। वे कहा भी करते थे कि पिता

जी खुश हो जाते हैं तो इसमें हर्ज ही क्या है ? मेरा बिगड़ता भी क्या है ?

और आज वह बहलाव एक सत्य बन गया था । मालती देवी का स्त्री हृदय सदा से ही धार्मिक था । वे सब कुछ को ठीक मानती थीं । उन्हें ब्राह्मणत्व का गर्व तो न था, परन्तु वे अपने को ऊँची जाति का अवश्य मानती थीं । इस समय पति के इस कार्य से उन्हें बड़ी तृप्ति हुई और पति को देवता मानने की भावना इससे अधिक मजबूत हुई ।

चंदो, रामा और महादेव के मन में नया साहस आ गया । संस्कृत का वह शुद्ध उच्चारण, वह गंभीर घोष, सदा से ही छोटी जातियों के लोगों को डराता रहा है । और उसने रामा और महादेव के मन पर अपनी छाप लगा दी । महादेव तो यों खुश था कि उसकी प्रार्थना हिंदी की थी । यह प्रार्थना संस्कृत की है, और यह देवताओं की भाषा ठहरी । भूत बिचारा क्या कर सकता है ? चंदो बामनी थी । उसका पति जब जीवित था तब वह भी संस्कृत बोलता था, परन्तु उसका स्वर और उच्चारण बड़ा खराब था ।

और सन्ध्या उस दिन के बाद वह हाथ नहीं दिखा, न कहीं थपथपाहट ही जुलाई दी । अनुष्ठान वाले पंडित ने भी अपनी पूरी दक्षिणा पाई और सारे गाँव में उसका नाम प्रसिद्ध हो गया । बल्कि उसके दो दिन पलटने लगे । नये ज़माने के लोग जो कहते थे कि पंडित बतला कर ठग लेता है, उनके प्रचार पर आपात लगा । वे कुछ दिन को उन सनातनियों के प्रभाव में पड़ गये । नीलाम्बर पंत ने सारे घर में हवन का धुँआँ भर दिया, और चंदो ने ब्राह्मण भोज के लिये रामा और महादेव के साथ, मालती देवी की मेहनत में ऐसा साथ दिया कि जिसका बयान नहीं, फल चौकीदार की आँखों में अब भी अविश्वास झलक आता था ।

धीरे-धीरे शरद ऋतु बीत गई और हेमंत आ गया । थोड़ा-थोड़ा जाड़ा पड़ने लगा । रात को रज़ाई की ज़रूरत पड़ती । नीलाम्बर पंत

और मालती देवी आराम से बड़े कमरे में बैठे थे। मालती देवी पान लगा रही थीं और नीलाम्बर पंत दिन की बातें सुना रहे थे। उन्हें अबकी बार पानी अच्छा पड़ जाने से अभी से फसल में बड़े अच्छे आसार नज़र आ रहे थे। स्वयं नीलाम्बर पंत का परिवार तो बढ़ा था ही, जो इस समय दिल्ली में था, और मालती देवी की भी अपनी रिश्तेदारियाँ कम नहीं। उनके लेनदेन को बिचारे नीलाम्बर चुपचाप भेलते थे क्योंकि रुकावट पड़ने पर वह भी कमल और बाकी बच्चों का नाम लेने लगती थीं और नीलाम्बर अपने भाइयों के लिये, भतीजों के लिये, कुछ भी नहीं कर पाते थे।

अभी यह लोग बातें ही कर रहे थे कि चंदो बदहवास सी भागी हुई आई और जब तक उसे कोई सँभाले वह वहीं पृथ पर बेहोश होकर गिर गई। नीलाम्बर पंत एक दम उठ खड़े हुए और मालती देवी की तो हालत ही बिगड़ गई। तुरंत चौकीदार को बुलावाया गया। वह सो रहा था। नीलाम्बर पंत ने डाटा, 'चौकीदारी करता है कि सोता है।' उसने माफी माँगी और आज्ञानुसार वह गाँव के हकीम को बुलाने चल दिया। घंटे भर बाद जब हकीमजी के प्रयत्नों से चंदो होश में आई तो उसने बताया कि जब वह रसोई में थी तब अचानक उसकी नज़र बाँई ओर की खिड़की पर गई। वहाँ खिड़की बंद थी। पर नीचे की ओर एक सूराख था और उसमें एक उँगली घुसी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे वह उँगली चटकनी उठाना चाहती थी। वह उँगली गोरी थी, और उसने साफ़-साफ़ देखा था कि उसका नाखून गुलाबी था जिसके बीच में सफ़ेद कमल था।

नीलाम्बर पंत ने सुना तो वे क्रुद्ध हो उठे। उनकी प्रकृति अतियाँ के खंभों पर टिकी थी। वैसे वे मरत रहते थे, परंतु कभी-कभी वे क्रुद्ध हो उठते थे और इन दोनों खंभों पर उनकी बेपत्नी एक महाराज की तरह रहती थी।

उन्होंने चिढ़ कर कहा, 'बेवकूफ़ औरत ! तूने उस उँगली पर जलता हुआ चिमटा क्यों न मार दिया ।'

चंदो ने सुना तो बोली, 'मालिक ! फिर क्या वह मुझे छोड़ देता । उस पर क्या असर होता ? वह तो हवा है हवा ।'

'तेरी अक्ल हवा हो गई है,' नीलाम्बर पंत ने कहा और वे वहाँ से उठ कर चले गये ।

मालती देवी ने अत्यंत सुहानुभूति से चंदो को लेजाकर उसके बिस्तर पर सुला दिया और रामा को आज्ञा दी कि वह पास ही सो रहे । वहीं अपनी खाट डाल ले । महादेव को भी वहीं सुला ले ।

मालती देवी लौटि तो देखा पति अपनी बंदूक भर रहे थे और दृढ़ दिखाई दे रहे थे ।

'क्या ?' मालती को देख कर उन्होंने ने कहा, 'लॉट आई !'

मालती देवी समझ नहीं सकी कि वे इसका क्या उत्तर देतीं । वे केवल देखती रहीं ।

'तुम समझती हो वह सब हवा है,' नीलाम्बर पंत बड़बड़ाये ।

मालती देवी ने कहा, 'और तुम क्या समझते हो ?'

'कोई बदमाशी है । ज़रूर इसमें कोई चक्कर है ।'

'कैसा चक्कर !'

'यह तुम जैसे नहीं समझ सकतीं ?'

'कहते हो नहीं । मैं कैसे जान सकती हूँ ?'

'यह तुम्हारे किसी नौकर की बदमाशी है ?'

'मेरे कौन नौकर हैं ? रामा, महादेव और चंदो के अलावा कौन है ?'

'ये नहीं,' नीलाम्बर पंत ने झुंझला कर कहा, 'ये तो तुम्हारे पुराने नौकर हैं, जो घर के भीतर रहते हैं । मेरा मतलब उनसे है जो बाहर रहते हैं । तुमने कभी सोचा ?'

'क्या ?'

‘जब शोरगुल होता है तब चौकीदार नहीं आता ।’

‘हाँ मैंने पुछवाया था । उसी ने नहीं, बाग के पाँचों मालियों ने भी यही कहा कि वे पहले से जानते हैं कि इस घर में भूत है । पंजेवाला भूत । उससे डर कर वे यहाँ नहीं आते ।’

‘हुँ !’ नीलाम्बर ने उपहास करने वाले स्वर से कहा, ‘दिन में कम-बख्त सब देख जाते हैं और रात को भीतर घुसने की कोशिश करते हैं । मैं एक-एक को ठीक कर दूँगा ।’

‘आप क्या करेंगे ?’ मालती देवी ने आतंकित स्वर से कहा ।

‘यह करूँगा !’ कह कर खिड़की के पास गये और बन्दूक उठा कर जो निशाना लगाया तो उड़ती चिड़िया नीचे आ गिरी । मालती देवी ने आश्चर्य नहीं किया क्योंकि वे अपने पति के इस गुण को जानती थीं । नीलाम्बर पंत हँसे और अचानक ही उन्होंने देखा कि बाग के दो माली इस घटना को देख रहे थे । एक ने दूसरे की ओर प्रशंसा से सिर हिलाया और दूसरे ने मानो सिर तिरछा करके स्वीकृति दी । दिमाग के फैलाव पर नीलाम्बर पंत को एक बहुत हल्का संदेह ऐसा रंगता हुआ नज़र आया जैसे सफेद दीवाल पर कोई भुनगा रँगता है ।

परन्तु इतनी सी बात नहीं रही । थपथपाहट फिर रात को शुरू हो गई और अब इतनी जल्दी-जल्दी वह बाहर के दरवाजों और खिड़कियों पर मुनाई देतो का बार-बार देखने पर भी कुछ दिखाई नहीं दिया । इस तरह कुछ ही दिन बीत सके । चन्दा मालकिन से लौट चलने का कहने लगी । मालती देवी भयभीत रहने लगीं । केवल नीलाम्बर पंत का क्रोध बढ़ने लगा और उनकी यह हालत हो गई कि वे इसे निश्चय ही कोई छलना समझते और अपना विरोध सहना उनके लिये और भी कठिन होता जाता था ।

थपथपाहट का आना फिर बंद हो गया । नीलाम्बर पंत को अब की बार कुछ जमता हुआ सा नज़र आने लगा ।

धीरे-धीरे खूब जाड़े आ गये । मालती देवी बीच के कमरे में सोफे

पर बैठी थीं और उन्होंने मुलायम कम्बल से पाँव ढँक रखे थे । उनके पति बगल की कुर्सी पर बैठे थे और चन्दो उसी समय मूँगफलियाँ लाकर रख गई, जिन्हें मालती देवी गर्म करवा कर रात के खाने के बाद खाया करती थी । जिन्हें मूँगफलियाँ जाड़ा में जरा से गुड़ के साथ खाना बहुत अच्छा लगता था ।

इसी समय धीरे से उसी कमरे के बड़े दरवाजे पर बाहर से हल्की थपथपाहट नुनाई दी । मालती देवी का चेहरा डर में ऐसा हो गया, जैसे उनका सारा खून नचुड़ गया था । नीलाम्बर पंत हँले से उठे और उन्होंने दीवार पर टँगी अपनी बन्दूक उतार ली । इशारे से भीतरी दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने अपने विश्वासपात्र महादेव को बुलाया । उसके हाथ में इस समय इशारे पर ही लाठी आ गई थी । वह डरता तो था, किंतु उन वफादार नौकरों में से था जो जान की बाजी लगाने में नहीं हिचकते, बशर्ते कि मालिक संग में जाखिम उठा रहा हो । एक बार नीलाम्बर पंत ने अपनी बन्दूक को हाथों में तोला और फिर जेब में भरा हुआ पिस्तौल रखा । रामा दार्च लेकर आ गया और फिर तीनों धीरे-धीरे द्वार की ओर सरकने लगे, ताकि चलने की ताँक भी आहट नहीं हो । मालती देवी के पास चन्दो आतंकित सी आकर खड़ी हो गई थी । वे दोनों भीतर की साँस भीतर, और बाहर की साँस बाहर, ऐसी भौंचक खड़ी थीं । उनके गालों में जैसे किसी ने साहस की गर्दन उमेठ कर धर दी थी ।

नीलाम्बर पंत जब द्वार के पास पहुँचे, उस समय ता थपथपाहट और अधिक बढ़ गई थी । उन्होंने झटके से द्वार खोला और एकदम गोली चलाई, पर वहाँ कोई न था । किंतु उनका हाथ सहसा हिल गया । ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे धक्का दिया हो और नीचे से गुजर गया हो । महादेव ने, न रामा ने, न उन स्त्रियों ने उन्होंने कुछ भी नहीं देखा । वे इस ताज्जुब में रहे कि क्यों आखिर मालिक ने इस फुर्ती से पीछे

मुड़ कर देखा और क्या था जिस पर बन्दूक के कुन्दे की चोट करने की कोशिश की थी। मालिक ने फिर तुरन्त द्वार भी बन्द कर दिया।

‘कुछ नहीं है,’ नीलाम्बर पंत ने भर्राए स्वर से कहा, लेकिन जो वहाँ मौजूद थे उन्होंने साफ देखा कि उस घनी सर्दी में उनके माथे पर पसीने की बूँदें भलक आई थीं। और उनका स्वर एकदम विकृत हो गया था।’

नीलाम्बर पंत का मन भीतर ही भीतर आतंक से भर गया था। क्या उन्होंने ही प्रेत को भीतर घुसा लिया है? क्या यह अपराध उनके ही घमंड ने किया है? वे सोच नहीं सके और आकर सोफे पर बैठ गये। उन्होंने अपने को चैतन्य करने के लिये सिगार सुलगाया और जब धुँआ उनके हलक से ठकरा कर बाहर निकला तो उन्होंने निगाह घुमा कर चारों ओर एक बार ऐसे देखा जैसे वे किसी को ढूँढ़ रहे थे।

रात को वे काफी देर तक मंत्र से बड़बड़ाने लगे और सुबह जब उठे तो लगता था कि वे चैन से सो भी नहीं सके हैं। क्योंकि उनकी आँखों में ललाई थी। और वे रोज की तरह ताजगी को भी महसूस नहीं कर रहे थे। रोज वे दो प्याले चाय पीते थे, आज उन्होंने तीन प्याले चाय पी, और आखिरी प्याले में तो बड़ो गहरी चाय डलवाई थी, जैसे वे किसी तरह की स्फूर्ति चाहते थे। मालती देवी ने देखा तो वे समझ गईं कि पति को भी अब विश्वास सा हुआ जरूर है, परन्तु वह यह भी जानती थी कि वे जिद्दी हैं और अपने मुँह से स्वीकार नहीं करेंगे।

नीलाम्बर पंत उस दिन बाहर ही रहे और पटवारियों से डाल-डाल, पात-पात का खेल खेलते रहे। पर जब शाम को लौटे तो उनके चेहरे पर वही उदासी लौटकर आने लगी। बौहरे सूरजभान ने बेईमानी से उनके खेत के तीन पेड़ों को अपने खेत की हदूद में, डोर बढ़ा-बढ़ाकर, चुपचाप शामिल कर लिया था। आज उन्होंने फिर से ज़मीन नपवाई थी और उनके पेड़ों को फिर से उनके हवाले किया गया था। उनकी

इस चाल ने उस वक्त फ़तह पाई थी जबकि पटवारी को सूरजभान ने चौंदा सुँघाई थी । और इस सबका भी उन्हें कोई आनंद नहीं हुआ ।

बैठे तो मालती देवी ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'पेड़ हमारे ही हैं,' उन्होंने ऐसे ठंडे स्वर से कहा कि मालती देवी को आश्चर्य हुआ । क्या इन्हें अपनी जीत की कोई भी खुशी नहीं हुई थी ! उन्होंने पूछा, 'खाना मँगवाऊँ ?'

'तुम खा चुकी ?'

'नहीं ।'

'तो मँगवा लो, साथ ही खा लेंगे ।'

'रसोई में ही चले चलोगे क्या ?'

'चलो ।'

रसोई में से खाकर बाहर आते वक्त द्वार पर एक बार हल्की थपथपाहट सुनाई दी । मालती देवी चिहूँक उठी । और संभवतः चौंके तो नीलाम्बर पंत भी, किंतु उन्होंने सहारा-सा देने को मालती देवी को पकड़ लिया । और ऐसा लगा जैसे वे दृढ़ ही थे ।

साढ़े बारह बजे थे । उन्हें लगा कि कोई उनके सोने के कमरे के बाहर धीरे से थपथपा रहा है । उन्होंने तुरंत सिरहाने जलती लालटेन की लौ को ऊँचा करके देखा ।

'कौन है ?' वे चिल्लाये ।

आवाज़ कमरे में गूँज गई । और ठीक उसी समय मालती देवी के कमरे से एक चीत्कार सुनाई दिया । सब फिर ताबड़तोड़ इकट्ठे हो गये । मालती देवी ने बताया कि पंजा उनके दरवाजे को थपथपा रहा था ।

'वह तो मेरे कमरे के दरवाजे पर भी था,' नीलाम्बर पंत कह उठे । और कहते हुये हठात् ठिठक गये, क्योंकि उन्होंने धैर्य धारण करने की चेष्टा की ।

पर रात फिर कोई सो न सका । नौकर घर-भर में दूँढ़ मचाते रहे । स्वयं नीलाम्बर पंत भी संग गये, मगर किसी का भी पता नहीं चल सका ।

मुबह जब चंदो चाय बनाकर लाई और मेज़ साफ़ करने आई तो उसके मुँह से एक लम्बी चीख निकली, जिसे सुनकर सब इकट्ठे हो गये। देखा मेज़ की धूल पर एक हाथ का निशान था।

‘वही हाथ है,’ मालती देवी के मुँह से निकला।

नीलांबर पंत ध्यान से देखते रहे। उनके चेहरे पर परेशानी तो थी, परन्तु उन्होंने तुरंत भीतर, बाहर के नौकर, यहाँ तक की चौकीदार को भी बुलवाया और सबके हाथों के छापे उस निशान के बराबर-बराबर लगवाये। उनका संदेह यहाँ तक बढ़ता हुआ था कि उन्होंने मालतीदेवी का हाथ भी उस धूल पर रखवाया, और अपना भी रखा, और फिर सब का एक-एक करके उस निशान से मिलान किया, लेकिन सब हाथ अलग तरह के थे और वह हाथ उन सबसे भिन्न था। इसका मतलब था कि वह हाथ का छाप कितना और ही आदमी का था। नीलांबर पंत ने शोर भी मचाया, नाराज़ भी हुए कि नौकर सहम गये, मगर नतीजा कुछ नहीं निकला। उन्हें यह निश्चित होने लगा कि हो न हो किसी के भी हाथ का यह निशान है, वह कोई घर के बाहर का आदमी नहीं, यह तो घर के भीतर ही बस गया है, अब उसे ज़रूर खोज निकालना चाहिये। चुनों के गाँव के थाने में रपट भेजी गई। घर को सिपाहियों ने घेर लिया। उनकी कमर कसी थी, मगर दिल ढीले थे। सारी खोज का नतीजा कुछ भी नहीं निकला। केवल मालती देवी ने हनुमानजी पर प्रसाद चढ़वाया और चंदो के हाथों बैटवा दिया। नीलांबर पंत दिखा रहे थे कि यह बेकार की सी बात है, पर दिल में उन्हें बड़ी तसल्ली मिल रही थी। जो काम वह खुद अपनी शान में आकर छिपकर करना चाहते थे, वह काम मालती देवी ने बड़ी सादगी और ईमानदारी से कर दिया था। वे स्त्री थीं और पति की मंगलकामना के साथ पुत्र का भविष्य भी उनके सामने था। घर के भीतर चक्कर लगाते वक्त नीलांबर पंत ने उस भवन को देखा तो उन्हें लगा कि वह मकान कम से कम तीन सौ बरस पुराना रहा होगा। इस कदर अजीब ढंग का वह बना

हुआ था कि उसका बयान नहीं। पर जो कुछ था संगीन दिखाई देता था। वहाँ कहीं सरो-सूराख नहीं था। पुस्तकों ही नज़र आती थी। हार कर सिपाहियों को छुट्टी दी और आकर कमरे में बैठ रहे। और दोनों हाथों पर सिर रखकर सोचने लगे। काश वे दिल्ली में होते, तो क्यों यह सब मुसीबत उठानी पड़ती। अब वे किससे लड़ें, क्या करें? क्या कमल को बुला लें? लड़का समझदार है। शायद वह कुछ हल निकाल सके या वे चले जायें। डेढ़ लाख की जायदाद क्या यां हो छोड़ दें। लेकिन कमल की पढ़ाई में हरज होगा। उसे बुलाकर क्यों इन परेशानियों में फँसा जाये! उसे तो न बुलाना ही ठोक रहेगा। यही सोचकर वे चुप रह गये।

मालती देवी को अब सपनों में वही हाथ दिखाई देने लगा था। वे कभी चिल्लातीं, कभी बकने लगतीं। इस सबसे परेशान होकर नीलाम्बर पन्त ने उनका पल्लेग अपने पल्लेग के बगल में ही लगवा लिया और दोनों एक ही कमरे में सोने लगे।

यहाँ भी मालती देवी चिल्ला उठतीं, 'छोड़ दे, छोड़ दे'

तब इनके पति उन्हें जगाते और उनके मुँह पर आशवासन देते हुए हाथ फिराते, जिससे वे चैतन्य हाँती और जागने पर उनके वस्त्र से सिर लगा लेतीं। ऐसे सो जातीं जैसे चिड़िया का बच्चा चिड़िया के साये में सा जाता है।

शनिवार की रात थी। मालती देवी सोने चली गई थीं। नीलाम्बर पन्त को एक पत्रिका मिल गई थी जिसमें एक हास्य की कथा छपी थी। वे अग्र लेटे से सोफा पर पड़े-पड़े उसे पढ़ते हुए सींगार पी रहे थे। जब वे उठे तब बारह बज रहे थे। वे सोने के कमरे की ओर गये। उन्होंने देखा मालती देवी लालटेन जलती छोड़ कर सो गईं थीं। और ज्यों ही उन्होंने द्वार भेड़ा उनके रोंगटे खड़े हो गये। ऐसा लगता था जैसे वहाँ नितान्त नीरवता छा रही थी। इतना घना सन्नाय था वहाँ कि अपनी साँस भी उन्हें सुनाई दी, लेकिन अपनी ही पत्नी की साँस

उन्हें सुनाई नहीं दे सकी। उन्हें लगा वहाँ मालती देवी नहीं थी, एक मुर्दा पड़ा था, जिसमें हलचल का निशान भी नहीं था। और उनके तकिये के पास एक चूहा था... उन्होंने गौर से देखा वह एक हाथ था। और कुछ नहीं। भारी पर्दे सिरहाने की ओर लटक रहे थे। और उन्हें और तो कुछ सूझा नहीं। तुरन्त बगल में रखा भारी गुलदस्ता उठाकर उन्होंने उसकी ओर फेंका। सिर्फ हाथ। उसके पीछे कुछ नहीं। केवल पर्दा। जरूर पर्दे के पीछे कोई छिपा हुआ होगा। गुलदस्ता जाकर पर्दे से टकराया। हाथ तुरन्त गायब हो गया और गुलदस्ता पर्दे से हाँकर सीधा पीछे के बन्द दरवाजे से जा टकराया। भारी पर्दा हिल उठा, पर वहाँ कोई नहीं था। उन्हें लगा कि कोई चीज बगल की दीवार की खुली आलमारी में घुसी है जिसने अपने पीछे दरवाजा बंद कर लिया है। परन्तु वहाँ जब उन्होंने देखा तो उन्हें लगा वह उनका वहम था। आलमारी तो ज्यों की त्यों थी। उसमें कुछ भी नहीं था। सामने की ओर जो घोड़े की जीन टैंगी थी, वह वैसी ही थी। अगर उसमें कुछ लगता तो क्या वह हिलती नहीं? उन्होंने भटके से आलमारी को बन्द कर दिया। छत पर इसी समय एक हल्की सी आवाज आई और उन्होंने लालटेन की रोशनी में देखा कि ऊपर जो जाली थी उसके पार एक हाथ था, गोरा सा। और वे कुछ भी नहीं देख सके। उन्होंने सारी शक्ति लगा कर आवाज दी—‘महादेव !!’

उस डरावनी आवाज ने घर में हलचल मचा दी और सब नौकर आ गये। बड़ी मुश्किल में मालती देवी को होश में लाया गया। उन्होंने बताया कि वही हाथ उनका गला घोट रहा था। और सोंस घुटने पर वह बेहोश हो गई थी। और इसके बाद वे बीमार रहने लगीं।

नीलाम्बर पन्त अपनी पत्नी और नौकरों को लेकर चले गये। उनके लौट जाने पर कहते हैं उनका मैनेजर लौट आया और वही उनसे आज्ञा लेकर उस घर में पहले की तरह बस गया। नीलांबर पन्त ने मजबूरी में आधा मुनाफा देकर खुशामद करके राजी कर लिया कि वह उनकी जमीन की भी देखभाल कर लिया करे। मैनेजर ने अंत में

स्वीकार कर लिया। जब मैनेजर को रहते हुए वहाँ एक साल बीत गया तब नीलाम्बर पन्त को अपने ऊपर बड़ी शमं सी महसूस हुई कि आखिर अब पन्जा कहाँ गया। जरूर यह कोई चाल थी। हो सकता है इस तरह इनकी जायदाद पर आँख गड़ा कर मैनेजर ने ही कोई तरकीब की थी। सुनोचें एक रोज वह घर पर बनारस का नाम लेकर गाँव चल पड़े। मैनेजर ने देखा तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा, 'आप आये। हमारे भाग जागे। मैं तो यहाँ परेशान आ गया।'।

‘क्यों आखिर क्यों?’ उन्होंने पूछा।

‘आपको शायद याद नहीं। यहाँ की रियासत से तो शहर की दाल-रोटी अच्छी! जब मैं मुकदमा हार गया था, मैंने तभी कहा था कि गाँव में रहना सहज नहीं। पता नहीं। आपको कैसा भी क्यों न लगता हो, मगर मुझे तो यहाँ की एक सी ज़िंदगी में लुप्त ही नहीं आता। न सिनेमा है, न कुछ सुसायटी है। बस पैसा कमाये जाओ और इतना कमाओ भी तो आखिर क्यों? उसके इस्तेमाल के पुरलुफ़ मज़े यहाँ हैं ही नहीं। गाँव वाले हैं कि जाहिल! बात करो तो दिमाग़ चाटते हैं। सरकार मुझे तो आप से बगावत करने का फल तब मिला कि दाने-दाने को मुहताज हो गया और अब मैं खाता-पीता हूँ तब भी चैन नहीं है। देखिये न! आप खुद बबरा कर यहाँ से चले गये!’

नीलाम्बर पंत मुस्कराये। पर वह बनावटी मुस्काराहट थी। कहा, ‘अरे नहीं। सब ठीक है। मैं तो इसलिये चला गया था कि सारा व्यापार दिल्ली में ठप होने लगा था। यहाँ तुम्हें आधा देता हूँ, तो वहाँ चोगुना आता है। अब तुम बताओ। आपे का लालच करके यहाँ रहूँ तो वहाँ का कौन सँभाले। कमल तो विलायत जा रहा है।’

‘यह तो आपने बड़ी खुशी की बात सुनाई,’ मैनेजर ने नम्रता से कहा।

परंतु दूसरे दिन सुबह उठते ही वे पहली बात बोले कि वे दिन में ही लौट जायेंगे।

मैनेजर ने पूछा, 'आखिर क्यों ?'

'तुमको यहाँ कोई परेशानी नहीं है ?'

'नहीं हज़ूर ! क्या बात हुई। मैंने नौकरों से सरकार का सारा इंतज़ाम करने को कहा था। क्या बताऊँ। अब के नौकर तनख्वाह तो दुगुनी चाहते हैं, पर नमक को गुड़ समझ कर खाते हैं। उसका अंदा करना भी खेल नहीं है। लेकिन सरकार ! रात तो नींद अच्छी आई ?'

नीलांबर पंत ने कहा, 'तुमने कभी यहाँ एक पंजा देखा है ?'

'पंजा सरकार ! ताश का ?'

'ओह नहीं ! हाथ ! हाथ !'

'हाथ केसा, सरकार ?'

नीलम्बर बहुत भँपे। कैसे कहते। कहा, 'कुछ नहीं। कमल की माँ कहा करती थी कि उसे एक हाथ दिखाई देता है।'

'कौन ! मालकिन कहती थीं !' मैनेजर ने कहा, 'अजी नहीं। हाथ दिखता था ! और वह नहीं दिखता था जिसका हाथ था !' चौकी-दार को बुलवाया गया। सब माली इकट्ठे किये गये। सबने कहा कि हाथ-बाथ तो कोई नहीं देखा कभी। हाँ सरकार के नौकर जरूर बताया करते थे तो हम भी मान लिया करते थे। तभी चौकीदार भी डरने लगा था और उसने सोचा था कि शायद इस मकान में भूत था। वे सब चले गये।

'वह देखिये ! वह !' नीलांबर पंत ने दरवाज़े की तरफ देखकर उँगली उठाई। उन्हें वहाँ वही गोरा सा, अधेड़ सा हाथ दिखाई दे रहा था। लेकिन मैनेजर ने देखा। उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उसने मुस्करा कर कहा, 'सरकार ! मैंने शेरीडन का एक कहानी पढ़ी थी, उसमें भी कुछ ऐसा ही था। लेकिन आप पढ़े-लिखे आदमी होकर हाथ देखने लगे ? मालकिन तो आखिर औरत थीं।'

पर हाथ अब वहाँ नहीं था।

'तुम्हें सचमुच नहीं दिखाई दिया,' नीलांबर पंत ने पूछा।

'नहीं सरकार !'

‘तो फिर रात को मेरी खिड़की के शीशे पर जो हाथ था।’

‘तो रात को भी हाथ आया था !’

नीलांबर बहुत अधिक लज्जित हो गये थे। उन्हें क्रोध भी बहुत था, क्योंकि सामने का आदमी उन्हें पागल समझ रहा था। और वे उसमें कहते भी क्या ! उसने तो हाथ देखा ही नहीं था !!

‘तो,’ नीलांबर पंत ने अंतिम बार पूछा, ‘सचमुच किसी ने भी तुममें से आज तक वह हाथ नहीं देखा ?’

‘कौन सा हाथ !’

‘कुछ गोरा सा, अथेड सा...’

पर मेनजर मुस्कुराने लगा था। नीलांबर पंत देखते ही रह गये। वे आगे नहीं कह सके। उन्हें लगा सामने की खिड़की के काँच के पीछे वही हाथ दिखाई दे रहा था।

उन्होंने सामान उठवाया और चुपचाप दिल्ली की ओर लौट पड़े। उन्हें वहाँ रहने में अब और कोई हाथ दिखाई नहीं दे रहा था।

कहानी खत्म हो गई।

खांडेकर ने कहा, ‘यह कैसी कहानी है। इसमें तो यह जाहिर हुआ कि वहाँ भूत नहीं था, असल में मैंनेजर की ही चालबाजी थी।’

मोहन ने कहा, ‘यह तो तुम अब कह रहे हो न जब कि हम तीन आदमी तुम्हारे साथ हैं।’

धीरूमल और मुरेश्वर ठठा कर हँसे।

खांडेकर चिढ़ गया।

‘उसने कहा, ‘इससे ज्यादा भयानक भूतों का किस्सा तो मैं जानता हूँ।’

‘आप ?’ मोहन ने व्यंग्य से कहा।

‘जी हाँ,’ खांडेकर ने बैठ कर कहा, ‘मुनाऊँ ?’

‘जरूर !’ मुरेश्वर ने इत्तिजा की।

खांडेकर मुनाने लगा :—

रफीक एक चित्रकार था । वह रहनेवाला तो रावलपिंडी का था लेकिन उसने तस्वीर बनाने का काम एक उस्ताद से इलाहाबाद में सीखा जहाँ उसके चचा रहा करते थे । चचा बड़े पैसे वाले आदमी थे । ऊँची मूँछे रखते थे और उनकी दाढ़ी नुकीली थी । गोरे रङ्ग से आदमी थे । उनकी भवें घनी थीं । वे शांत दिखाई देते । आसपास में जमींदारी थी । उससे पैसा आता था । जो कायदा था उसके हिसाब से वे कभी बेईमानी नहीं करते थे, रियाया रियाया थी, वे मालिक थे । सुबह-शाम तस्वीह फिराते, बातें करते तो अरबी-फारसी की कविताएँ सुनाया करते । अपनी एकमात्र पुत्री कुलमुम से उन्हें बहुत स्नेह था । और कैसी थी वह कुलमुम कि रङ्ग उसका गुलाब सा था, आँखों में मोती तैरते थे, मुस्कराही थी तो ऐसा लगता था जैसे कोई कमल अपनी पंखुरियाँ खोल रहा हो । चचा थे तो पुराने खयाल के मगर जब से भतीजा आ गया था तब से नयी रोशनी पुरानी खिड़कियों और दरवाजों से घर में घुसने लगी । कुलमुम ने अँगरेजी पढ़ी और रफीक ने अँगरेजी की नसैनी पर चढ़-चढ़कर दीवारों को पोतना भी सीख लिया । वह चित्रकार बन गया ।

रफीक मुन्दर था । बलिष्ठ था । कुलमुम को उससे प्रेम हो गया और सचमुच वे दोनों ही एक दूसरे को प्यार करने लगे । दोनों रात की चौदनी में घर के बगीचे में टहलते । जब कभी मौका लगता दोनों गंगा पर नाव में घूमने जाते । चचा देखते और कुछ नहीं कहते क्योंकि उनके भाई की निशानी ही उनकी बेटी के गले का नया हार बनने वाली थी ।

उन्हें भला क्या एतराज हो सकता था। सुबह की ओस घास पर बाद में चमकती और आस्मान में भी ललाई बाद में दिखाई देती, लेकिन रफीक की आँखों में कुलसुम का प्यार पहले चमकता और कुलसुम के गलों पर वह सुन्दरता दिखाई देने लगती, जो नये चित्रकार की तूली में नयी ही स्फूर्ति करने की सामर्थ्य रखती थी।

एक दिन चचा ने पुकारा, 'कुलसुम ! बेटी कुलसुम !'

'आई अम्मा !' कहकर वह पाम आ गई।

'क्या कर रही है ?'

'एक कहानी पढ़ रही थी।'

'कौन सी कहानी !'

'ब्रेडन की है।'

'वह कौन ?'

'एक अँगरेज औरत है।'

चचा को अँगरेजी से ज्यादा मुहब्बत नहीं थी। बोले, 'अरी कुल अरबी-फारसी भी तो पढ़ा कर।'

'अम्मा ! समझ में तो आती नहीं।'

'लानत है,' चचा ने कहा, 'क्या जमाना आ गया है।'

कुलसुम ने बड़े लजीले स्वर में कहा, 'अम्मा !'

पिता का हृदय था। झुक गया।

कुलसुम उठ कर गई तो रफीक कमरे में अचकन पहन रहा था। उन दोनों का प्रेम अभी प्रगट रूप से चचा को ज्ञात नहीं था, न उन्होंने कभी जाहिर ही किया था। कुलसुम बैठी तो किताब समाने रख ली। रफीक ने नजर डाली तो कहा, 'अच्छा तो हुजूर ने यह दास्तान पढ़ ली।'

'सच मुझे तो बहुत अच्छी लगी।'

'क्यों आखिर।'

'देखिये न मुहब्बत कितनी जबर्दस्त चीज़ है।'

‘लेकिन वह आदमी तो बेमुरब्बत था न ?’

‘हुआ करे ! मुहब्बत कब देखती है कि मुरब्बत क्या है । वह तो अपना अपना बिसारने की एक अजीब शान लिये रहती है ।

‘सच कहती हो !’ रफीक ने कहा ।

‘तो क्या भूट,’ उसने मुस्करा कर कहा ।

‘तो फिर वादा करती हो ?’

‘क्यों ?’

‘कि आज से तुम मेरी हो !’

शर्म से वह मुस्करा कर सिर झुका कर चुप रह गई । रफीक ने अपनी अँगूठी उसकी उँगली में पहना दी । आस्मान में पानी बरस जाने के बाद इन्द्रधनुष निकल आया था । रफीक ने उसकी ओर देखकर कहा, ‘वह देखती हो आस्मान को ! वह क्या है वहाँ ! वह हमारा गवाह है । भूल तो न जाओगी ? कहीं ऐसा न हो कि चचा तुम्हें किसी रईस से ब्याहने की कोशिश करें और तुम उस वक्त चुप हो जाओ । सच कहता हूँ कुलमुम ! मैं तुम्हारे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकूँगा ।’

कुलमुम ने अँगूठी पर नजर गड़ा दी थी । वह अँगूठी रफीक की माँ अपनी उँगली में पहनती थी । आज वही अँगूठी, उसी परम्परा में, रफीक ने उसकी उँगली में पहना दी थी ! उसका हृदय एक विभोर आनंद से सराबोर हो रहा था । अँगूठी चौड़ी थी और उस पर मुगल जमाने का हीरा जड़ा था, जिसके कोने नुकीले नहीं थे, उसके दोनों तरफ सोने के ही दो छोटे-छोटे तांते बने हुए थे और ऐसा लगता था जैसे वह एक बहार का छोटा नमूना हो, जिसमें उगते सूरज की चमक थी, कमल था और ये दो सुग्गे जो बड़ी खूबसूरती से बनाये हुए थे । रफीक उस अँगूठी को तब से देखता आ रहा था जब से उसने माँ की गोद में जिंदगी की पहली किरन का अहसास किया था । उसका क्यूना तो दूर वह उसे वैसे ही देख कर पहचान सकता था । ऐसी उसे उससे लगन थी । माँ की याददाश्त थी वह । उसमें उसकी जिंदगी के अस्फुट बोल थे जो

एक दिन धीरे-धीरे सार्थक होने लगे थे, वह घुटनों चलने वाले फितरे की एक इन्सान बन जाने की पूरी तारीख थी।

‘मैं वादा करती हूँ,’ कुलसुम ने लरजती मगर संजीदा आवाज़ से कहा, ‘कि जब तक मैं जियूँगी तुम्हारी रहूँगी। खुशी और ग़मी मुझे बदल नहीं सकेगी। ताकयामत मैं तुम्हारी ही बनकर रहूँगी। ग़रीबी और अमीरी हमें अलग नहीं कर सकेंगी।’

रफीक की तबियत को चैन आया और फिर वे बातें करने लगे कि वे शादी की बात चचा से कह दें। आखिर रफीक चचा के सामने पहुँचा।

‘चचा जान !’ उसने कहा।

‘ऊँ !’ चचा ने तकिये के सहारे उठंग कर कहा, ‘क्या है भई !’ चचा की आवाज़ में आज वह बात नहीं थी जो वह रोज़ पाता था। आज चचा की आवाज़ में कुछ रूखापन था। आखिर क्यों ? उसकी हिम्मत हारने लगी। चचा ने तिरछी नज़र से देखा और कहा, ‘बख़ुरदार कुछ कहना चाहते हो ?’

‘जी !’ रफीक ने लड़खड़ाती ज़बान से कहा—‘और वह हकला गया। वह समझ ही नहीं सका कि बात को पेश किस तरह किया जाये। उसने हिम्मत बाँधकर कहा, ‘मैं...मैं...’

‘ऊँ !’ बुजुर्ग ने फिर ठंडी आवाज़ में कहा।

रफीक का सूरज डूबने लगा। उसने जोर लगाकर कहा, ‘मैं कुलसुम से शादी करना चाहता हूँ।’

वह समझता था चचा बौखला उठेंगे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वे उसी ठंडे और काटते स्वर से बोले, ‘साहबजादे ! यह सब खुदा की बरकत मेरी कमाई है। समझे। मैं घर जमाई नहीं चाहता। मैं ऐसा आदमी नहीं चाहता जो मेरी बेटी से इसलिये मुहब्बत करे कि वह मेरी जायदाद पर नज़र गड़ाये हो। वह किसी भिखारी की बेटी नहीं है, समझे। पहले उसके लायक अपनी हैसियत तो बनाओ। खाली लकीरें

खींचने और तस्वीर रँगने वाले मुसव्विर को मैं अपनी बेंटी नहीं दे सकता। मेरी लाडली बड़े नाज़ों की पत्नी है। समझे !'

इस तीसरी बार की समझे ने तो रफीक को आबरू का कुचल कर ही फेंक दिया जैसे समझे न थी, वह कोई फीलपाया था। चुपचाप लौट आया और बाहर निकल गया। रात भर नहीं लौटा। कुलसुम बार-बार बाहर देखती। चचा ने देखा तो डोंटा, 'क्या देखती है तू !'

'रफीक भाई अभी तक नहीं आये।'

'नहीं आया तो आ जायगा।'

'मगर....'

'मगर की जात पानी में। चल अपने कमरे में।'

चचा की बात सुनकर वह रोऊँ-रोऊँ हो गई। आज तक तो वे कभी इतनी सख्ती से नहीं बोले थे। कमरे में जाकर खूब रोई, खूब रोई, और कपड़ा मुँह में भर लिया ताकि आहट ज़रा भी न हो। सोचने लगी हो न हो अब्बा ने ज़रूर इनकार कर दिया है और वे बेताब होकर चले गये हैं। 'हाय अब्बाह' कुछ ऐसी वैसी बात न हो जाये। इतना तो याद रखियो कि वह मेरा सुहाग है। उसके बिना मैं भी नहा रह सकूँगी। एक भी दिन जिंदा नहीं बचूँगी। अबकी बार वह लौट आये तो हम दोनों कहीं पर भाग चलेंगे जहाँ कोई बीच में न होगा। और यों ही सोचते-सोचते आखिर नादान लड़का भूखी-प्यासी ही सां गई। सुबह मालूम हुआ कि मामा ने दस्तरखान बिछाया तो अब्बा ने अकेले ही जमकर खाना खाया, बल्कि रात वे मुर्गमुसल्लम पकवाने की बात भी चला रहे थे। कुलसुम को एक तरफ ताज्जुब हुआ, दूसरी तरफ उसे सद अफ़सोस भी हुआ क्योंकि जिस तोप की आवाज़ में वह शादी के भड़ाके चाहती थी, उसमें तो पत्नीता भी न छुड़ाया था कि अपने ही महल को लेन्दे के दो धक्के देने पर आमामा हो गया कि नीवों तक खाक बिछा देने की कसम खा बैठा। कुलसुम को अजब हैरानी थी। इतने सीधे-सच्चे आदमी थे और यह इन्हे हुआ क्या ! मामा से ही रफीक

से हुई बातें भी पता चलीं। अब्बा इतने लालची हैं कि मुझे किसी रईसजादे के साथ कर देना चाहते हैं ! वे यह भी नहीं सोचते कि इससे मेरे दिल पर क्या बीतेगी ! क्या बात है भला ! गोया मैं कुछ हूँ ही नहीं। मेरी पढ़ाई-लिखाई गई जहन्नम में !

और कुलसुम अभी यां ही बतिया रही थी कि किसी ने पुकारा, 'कुलसुम !'

सिर उठा कर देखा तो रफीक था। शर्म से कुलसुम ने अपनी लाल आँखों को तर्किये पर छिपा लिया क्योंकि वह तो रो रही थी और वह मुस्करा रहा था, क्योंकि कुलसुम के बाप ने ओछापन दिखाया था और वह अपना बड़प्पन दिखा रहा था कि उसे कुछ भी जैसे याद ही नहीं था।

'कुलसुम !' उसने फिर कहा।

कुलसुम ने उठ कर आँखें पोंछ ली और उसके पाँव पकड़ लिये और कहा, 'माँत भी हमें जुदा नहीं कर सकती, रफीक। तुम मेरे हो। मेरे ही रहोगे। सच कहती हूँ मैं किसी की परवाह नहीं करती। तुम्हारी हूँ, तुम्हारी रहूँगी। मुझे यहाँ से ले चलो। जो कुछ रुखा-सूखा होगा वह खा लेंगे।'

'नहीं कुलसुम !' रफीक ने कहा, 'तुमने अपनी मुहब्बत दिखाई। मैं अपनी टेक निभाऊँगा। चचा जान समझते हैं कि मैं कमा नहीं सकता। अरे मैं कमाऊँगा और इन्हीं हाथों से तस्वीरें बना कर ही कमाऊँगा और जिस दिन लौट कर आऊँगा, उस दिन कुलसुम मेरी होगी। मैं सिर्फ एक वादा चाहता हूँ।'

कुलसुम ने कहा, 'कहो। मैं कसम खाती हूँ कि तुम जो कहोगे वही मुझे मंजूर होगा।'

'मुझे यही उम्मीद थी,' रफीक ने कहा और सीधा चचा के पास चला गया।

वह अजन्ता की गुफाओं में जा रहा था। नवाब हमीद हुसेन ने उसे बीस हजार रुपये इनाम देने की बात की थी बशर्ते कि वह उन्हें अजन्ता

की असली नकलें बना कर ला देगा। हमीद हुसैन दौलत में तैरने-तैरते थक गये थे और इसलिये जिन्दा रहने को सिर ऊँचा रखना चाहते थे। वह थी कि घटती न थी, नाक की तरफ़ चढ़ती थी। तब कोफ़्त से उसे सामने से हटाने को हाथ मारते थे, और उस वक्त जो छींट उछल जाते थे, उनमें दस-बीस रफीक पला करते थे। चचा खुश से नहीं दिखे।

कहा, 'देखो। अभी तां ज़बानी जमाख़र्च है। मियाँ कुछ करके दिखाओ।'।

रफीक लौट आया। उसने कहा, सब बताया। कहा, 'सुना तुमने।'।

'सब सुन चुकी हूँ। मैं यहाँ नहीं रहना चाहती।'।

'क्यों?' रफीक ने कहा, 'तुम घबराती क्यों हो? मैं लौट कर क्या नहीं आऊँगा?'

'क्या बकते हो,' कुलसुम ने कहा, 'खुदा के लिये कम से कम सोच-समझ कर ही ज़रा मुँह से बात निकाला करो न? तुम जानते हो मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती। क्यामत तक साथ रहने का ब्रैंडन ने एक ही तरीका बताया है। जानते हो न? खुदकशी। तुम्हारे लिये मैं वही करूँगी। ताकि मेरी रूह चैन से कहीं कब्रों के खोखला में न मँडराती रहे बल्कि दुनिया की हवा में तुम्हारे लिये आज़ाद मगर बेकल भटकती रहे।'।

'नहीं कुलसुम,' रफीक ने कातर स्वर से कहा, 'चचा ने मुझे पाला है। वे चाहते हैं उनकी लाइली आराम से पले। एक बार तो मुझे मौका दो। मुझे दुनिया में अपनी भी तो कुछ इज्जत कायम करने दो। लोग तुमसे पूछेंगे तुम्हारा शौहर क्या करता है? तो क्या कहोगी तुम? कि मेरे वालिद के टुकड़ों पर पलता है?'

इस बात पर कुलसुम मात खा गई। बड़े से बड़े आदमी की बेटी चाहती है कि उसका शौहर खुद कुछ करे, कुछ नाम हासिल करे, ताकि बीबी बन कर वह किसी तरह की तसल्ली पा सके, इज्जत पा सके।

आखिर दुनिया तो दुनिया ही है। कोई यह तो है ही नहीं कि बस अब मियाँ, बीबी, बस दाही रह जायेंगे। पूछने वाले पूछेंगे ही और उन सबको क्या जवाब दिया जायेगा !

रफीक ने दूसरे ही दिन बिस्तर गोल कर दिया।

लेकिन उस गये एक साल बीतने को आया, एक खन तक नहीं आया ! कुलमुम बावली हों गई। एक खत आया भी तो चचा के नाम जिसमें लिखा था, फुर्सत नहीं मिलती।

बुद्ध के चित्र बनाते-बनाते वह उनके जीवन में इतना तल्लीन हो गया कि उसमें एक अजीब सी विरक्ति छाने लगी। पहले वह काम में इतना डूबा हुआ था कि कुलमुम के खत आने और वह पढ़ कर दुगनी तेज़ी से काम में लगता कि जितनी जल्दी कर सके उसे खत्म कर डाले। पर ज्यों-ज्यों वह काम में डूबता गया उसकी लगन हटने लगी और उसे यशोधरा की जगह कुलमुम नजर आने लगी और वह सोचने लगा। मैं क्यों फँसूँ ? मैं तो कलाकार हूँ, मैं क्या इस तरह अपने को बेच सकता हूँ। मुहम्बत है तो अच्छी चीज़ लेकिन मैं उसके लिये अपनी कला का नाश कर दूँ ? यह तो संसार के प्रति अन्याय होगा।

उधर कुलमुम हलाकान हुई जाती। क्या सबब है। क्या किसी और के फेर में पड़ गये। खत क्यों नहीं लिखते। पहुँचा टूटा जाता है ऐसे चार सतर लिख देने में। अये हाय ! चार टेढ़ी लकीरें न्वाँचना क्या आ गया गोया हम कुछ रहे ही नहीं।

चाचा जान ने कहा, 'मुनती है।'

'हाँ अब्बा !' वह अनमनी सी बोली।

'नहीं आया न वह ?' चचा ने कहा, 'अरी मैं जानता था। तू तो अँगरेजियत की टाँग तोड़ती है न बेटी। तूने शेक्सपियर का टेम्पेस्ट ड्रामा बढा है ?'

'जी हाँ।'

'उसमें लड़की का बाप प्रोस्पेरो था न ? कितना नर्मदिल था !

लेकिन बेटी के लिये उसने भी अपने हाँने वाले जमाई से सख्ती का बर्ताव किया था ! मैंने भी यही देखा था । रफीक को तुमसे मुहब्बत होती तो क्या वह ऐसा हो जाता ! बेटी ! यह शायर, यह मुसव्विर, यह लोग शरीफ आदमी नहीं होते । इनका दिल बड़ा नाजुक होता है, मगर यह लोग अपनी-अपनी ही सोचा करते हैं । इनकी बला से दूसरे जियें या मरें । इन्हें इस सबसे कुछ मतलब नहीं । तू तो मेरा कहना मान । रामपुर से खत आया है । नन्दे मियाँ राजी हैं । बड़े आराम से रहेगी, हों । अगली पहली तारीख को ही तय किये देता हूँ ।

‘नहीं अब्बा !’ कुलमुम ने कहा, ‘एक बार लिखकर पूछ तो लीजिये ।’

‘तू ही पूछ भाई । मैंने तो जो किया सो तो भले के लिये किया है । मुझे इस सब में कुछ मतलब की बात नजर नहीं आती बेटी ।’

कुलमुम उठ आई । खत डाल दिया कि तुरंत जवाब दो । पहली का मेरी शादी पक्की हो रही है । बताओ मैं क्या करूँ ?

उस खत को पढ़कर रफीक को आग सी लग गई । मुझसे तो वादा किया था और अब पूछती हैं मैं क्या करूँ ? आखिर तो लालची की ही बेटी है न ? लालच ने इसकी भी आँखों पर पर्दा डाल दिया ! और रफीक ने उस तस्वीर को देखा जिसमें बुद्ध अपनी यशोधरा को छोड़ कर जा रहे थे । हाथ से कुलमुम का खत गिर गया और फिर वह बुद्ध की मूर्ति की तस्वीर बनाने लगा ।

कुलमुम ने डाकिये से पूछा । उसने रुखे स्वर से कहा, ‘काँई खत नहीं ।’ और बड़बड़ता चला गया, ‘जाने कितनी डाकें आने वाली थीं ! आती तो गोया मैं छिपा देता ! मेरी कोई इनमें अदावत ?’ कुलमुम अपना सा मुँह लेकर भीतर आ गई । कितना रोई, कितना रोई पता नहीं । पहली तारीख पास आ गई थी ।

चन्ना ने कपड़े मँगाये, गहने मँगाये, और उस लगा कि उसकी दुनिया उसके सामने ही उजड़ी जा रही थी । उसने उस अँगूठी को एक

बार चूमा और चुपचाप उठी और रात के सन्नाटे में घर से निकल पड़ी। वह मर कर दफन नहीं होगी। वह हमेशा उम्मी के लिये रहेगी। और अगर उसके कदम गंगा की तरफ चले, वहाँ वह रफीक के साथ किनारे पर घूमती रही थी। वह यादें कितनी सुखकर थीं।

और रात गहरी हो गई। कुलमुम पानी में उतरी और मन ने कहा, 'लौट चल।'।

मगर वह मरना नहीं चाहती। वह हमेशा के लिये रफीक से बिछुड़ना नहीं चाहती। वह उसके पास रहना चाहती है क्योंकि उसका दिल नगा नहीं है। और वह आगे ही बढ़ती चली गई, वहाँ तक कि उसकी गर्दन तक पानी आ गया।

थोड़ी देर बाद पानी ही पानी दिखाई देने लगा। कुलसूम गंगा की लहरों में सो गई थी।

सुबह अम्बा मियों उठे ता लड़की नदरत। इधर दूँढ़ा, उधर दूँढ़ा। कहीं नहीं मिली तो सिर पीट लिया। आँखों के आगे अंधेरा छा गया? अब वह उनके किस काम की रही! उसने तो खानदान का नाम तबाह कर दिया! बुजुर्गवार का खाना-पीना हराम हो गया। प्रॉस्पेरो बनने चले थे, अब ढेर हो गया। नाउम्मीदी के तूफान चलने लगे और जिंदगी का आखिरी सहारा, अंतिम चिराग भी गुल हो गया।

लेकिन रफीक की आग भड़क रही थी। वह उसे भूल जाना चाहता था। अच्छी बात है। कर लेने दो शादी! रईस की दाँलत ने वे सब ग्वाब हमेशा के लिये मिटा दिये? अब वेगम बनने की इच्छा हुई है। ठीक ही तो है। रफीक के पास है क्या? वह एक बार दाँलत ले भी आया तो क्या हाथी का पेट बिल्ली की खुराक से भर सकता है! कभी नहीं। पहली के बाद चलेगा वह। सामने जायगा, पूछेगा 'बीबी बंदगी'।

लेकिन फिर खयाल आया। आखिर क्या? क्या वह शर्मियेगी? अगर इतनी ही हया होती तो वह तैयार ही क्यों होती? मुझे तो ऐसा प्यत लिखा है जैसे मुझ पर कोई अहसान करने के लिये लिख दिया हो।

बला से मेरी। तुम खुश रहो। हम भी कोई नया आशियाना बना लेंगे। हमें कब कमी है? मर्द की जात तो बंजर में बीज बिखेर कर लोहा उठाये तो आत्मान की आँखों से एक कतरा आँसू गिरे या न गिर, धरती सोना उगलने लगती है। तू समझती है कि मैं तेरे बिना मर जाऊँगा! तूने मेरी दौलत को मेरी मुहब्बत की तराजू बनाना चाहा। ता जा। पराये आगोश में अपने को दफ़न कर दे। मुझे मेरी यह बीरानी भली, हजार बार मैं इस पर सद्के! त्यों दवाँ बढ़ता चला आया हूँ। लौट कर देखना मेरा काम नहीं, क्योंकि पीछे तो फटा दामन है, जिसे सोना मेरी ताकत के बाहर है, शायद नसीब में ही नहीं है।

अल्लाह ने किसी को सोना दिया, किसी को हुकूमत। मुझे तो उसने एक कूँची देकर कहा है कि ऐ नादान! तू तस्वीरें बना कर सोचता है कि तू दूसरी दुनिया बना लेगा! मेरे हाथ की खुदाई छीन लेगा! तो यह तेरा वचपना है। जा न तू इस दुनिया का ही रहेगा, न उसका ही। लटका रह। जीते जी तो तुझे लोग मुर्दा समझेंगे और मर जायगा तो लोग तेरी याद भी करते हुए शर्मयेंगे। क्या करेगा वह इलाहाबाद लौट कर! बेकार! तो! क्या न वह कहीं और चला जाये!

किन्तु मन नहीं माना। उसे लगा वह सब कुछ भूल जायगा। क्या यह मुमकिन था। नहीं! वह उनके घर नहीं जायेगा। वह दूर गंगा के किनारे पर रहेगा। वहाँ कहीं ग्लामोशी में सारी जिंदगी ही गुज़ार देगा। और यों सोचते हुए जब वह इलाहाबाद पहुँचा तो दूसरी तारीख थी और अनजाने ही उसके पाँव उसी जगह पहुँच गये जहाँ वह कुलसुम के साथ घूमा करता था। उसकी जेब में सिर्फ़ सौ रुपये बाकी थे। वह सख्त बन जाना चाहता था, ऐसा कि वह यह महसूस करना चाहता था कि उसे कोई गम नहीं है।

किनारे पर घूमते हुए उसने अपनी कापी निकाली और बैठ कर स्केच बनाने लगा। दूर की नाव बनाई, लहरों में पड़ता भँवर भी बनाया। आत्मान में उड़ते हुए परिंदों के टोल दिखाई दिये। उनको भी ऐसा

सफ़ाई से कापी में कैद कर दिया कि उड़ान जिंदगी को छोड़ कर तस्वीर का पहलू बन गई। फिर बैठा हुआ चार आने के सिगरेट के 'लायन' छाप डिब्बे में से सिगरेटें पीता रहा। एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी। अब जितना ही गम उसकी तबियत को उचाटना उतना ही वह समझता कि वह खुश था, उसे किसी बात का भी रंज नहीं था, कोई तारीकी छाया उस पर नहीं थी, कोई कभी उसके मन को ख्याये नहीं जा रही थी।

अचानक उसकी नज़र सामने मछेरों के एक झुण्ड पर पड़ी। वे लोग कुछ उठायें ला रहे थे। क्या था वह? एक लाश सी लगती थी। उसे उन्होंने नाव के पाल से ढँक रखा था। शायद कोई मर गया है। कितने गरीब लोग हैं। इन्हें कफ़न तक नहीं मिला कि पाल से ही लाश को ढँक दिया !!

करीब सौ गज़ की दूरी पर मछेरों ने लाश को उतार कर धर दिया, एक मछेरा उसके सिरहाने बैठ गया और दूसरा उसके पाँवों की तरफ़।

रफीक ने जल्दी से कापी खोली और अपनी पेंसिल निकाल उसका रेखा-चित्र बनाया। अभी उसने ख़त्म ही किया था कि वे लोग लाश को उठाकर फिर चलने लगे। उनकी आवाज़ें कान में आने लगीं। रफीक उठा और उनकी तरफ़ ही चल दिया।

‘मुनो भाई।’

मछेरे रुके नहीं।

एक ने पूछा, ‘क्या है?’

‘तुम क्या लिये जा रहे हो! लाश है न?’

‘हाँ बाबू। घंटे-डेढ़ घंटे पहले यह अपने आप किनारे पर उतराई थी। हमने बाहर खींच लिया।’

‘कोई डूब गया लगता है?’

‘जी हाँ बाबू जी! बड़ी ख़ूबसूरत लड़की है।’

‘खुदकशी हमेशा हसीन होती है,’ वह बड़बड़ाया। और फिर वह कुछ देर लाश को देखता रहा।

‘सुनो,’ उसने कहा ।

‘क्या है हज़ूर ।’

‘रुक जाओ ।’

‘क्यों ?’

‘जो मिट गया है मुझे उसकी तस्वीर बनाने दो ।’

उन्होंने उसकी तरफ़ ऐसे देखा जैसे वह कोई बहुत अजीब आदमी था । रफ़ीक़ को खुशी हुई । वे उसे हृदयहीन समझ रहे थे !

‘मैं तुम्हें पाँच रुपये दूँगा’ उसने कहा ।

आगे वाला मछेरा रुक गया । उसने हाथ बढ़ा कर कहा, ‘ज़िन्दगी की कीमत इसे न मिली, तो लाश की कीमत देने वाला मिला है !’ वह हँसा । उस हास्य में कितना विद्रूप था किन्तु रफ़ीक़ ने उसे मुनकर भी ज़ंम नहीं सुना । उसके लिये ज़िन्दगी थी ही क्या ? एक क़ुलना ! और कुछ नहीं, कुछ नहीं । वह उसे बरबाद होते हुए देख कर हँसना चाहता था ।

उसने बढ़ कर पाल हटायी और लाश के चेहरे की ओर देखा, जो टंडा, सफ़ेद था । कुलसुम का चेहरा । कुलसुम का चेहरा । वही आँखें ज़ंम देख रही हैं, वही हाँठ जिन पर अब भी मुस्कराहट लगी है । वह डग़ा हुई नहीं है । वह जैसे एक मपना देख रही है ।

एक बार देखा । दो बार देखा ।

तो कुलसुम मर गई है !

कौन नहीं मर जाता एक दिन !!

सब आते हैं, सब चले जाते हैं !

तो क्या वह इसके लिये अफ़सोस मनाये ?

उमर खय्याम ने लिखा है कि जहाँ एक दिन जमशेद अपना दरबार करता था वहाँ गोरखर घूमते हैं । गदहे अपनी टाप से उन बादशाहों की कब्रों को रौंदते हैं, एक दिन जिनके उठते सिरों को देखकर सारा जहान अपना सिर झुकाया करता था !

यही है वह कुलमुम जिसने उससे वादे किये थे !
इसी के साथ वह चौदनी रातों में घूमा था !
और उसने फिर देखा, वही गोरी बाहें । वही अँगूठी, अब भी
उसकी उँगली पर दिखाई दे रही थी ।

ग़म करे वह !

क्यों ?

क्या है जिसमें लिये वह ग़म करे !

बुद्ध ने यही वाक्य कहा था !

यह सारी दुनिया दुख है ।

दुख से निजात क्या है ?

ग़म मत करो ।

नहीं वह नहीं रोयेगा ।

वह कभी नहीं रोयेगा ।

रोकर क्या वह अपनी कमज़ोरी दिखायेगा ?

कभी नहीं ।

कभी नहीं ।

मछेरे मनेफे नहीं । वह हठात् लाया और चल पड़ा । उसकी कॉपों
उसके बगल में दबी थी ।

एक मछेरा हेसा, जैसे उसे यही उम्मीद थी ।

‘उठा रे !’ उसने कहा ।

वे फिर शय का लेकर चल पड़े, लेकिन रफ़ीक चला जा रहा था,
चला जा रहा था !

कहाँ जा रहा था वह !

रफ़ीक को स्वयं नहीं मालूम था !

वह तो चलता चला जा रहा था ।

उसका कोई अंत नहीं, क्योंकि उसका कोई आदि नहीं हुआ था ।
वह चलता है क्योंकि ज़िन्दा है ।

उसे इलाहाबाद में नहीं रहना है। वह कभी यहाँ नहीं रहेगा। वह उस शहर, उस नदी, उस किनारे, उस शव, उस सबको भूल जाना चाहता था, सदा के लिये भूल जाना चाहता था।

कब तक वह चलता रहा इसका उसे खुद कोई अंदाज नहीं था। लेकिन वह तो चलता जा रहा था। आखिर वह थक कर राह के किनारे गिर सा गया। आसमान में सूरज निकला हुआ था और अपनी खामोश रफ्तार से चला जा रहा था। वह निकलता है तो परिदे बोलते हैं, वह डूबता है तो चुपचाप दुनिया भी सोने का इंतजाम करने लगती है। लेकिन वह कहाँ निकलता है और कहाँ डूबता है। वह कब नेजे चढ़ता है। साइंस कहती है कि यह जमीन खुद घूमती है। ठीक ही है। वह खुद भी तो घूम रहा है। क्यों फिर उसे याद आ रहा है। वही आँखें, वही हाँठ, वही मुस्कराहट और फिर वही अगूँठी ! वह उसको याद नहीं करना चाहता। मछेरे ही तो थे जो उसे उठा कर ला रहे थे। गंगा की पवित्र धारा बही जा रही थी। कैसे वह उसको निगल सकी ! निगल ही कहाँ सकी ! किनारे पर तो उठा कर फेंक दिया उसे और फिर ! फिर कुछ नहीं।

लोग ऐसे ही आते हैं; दुनिया से उठ जाते हैं। अगर वह गिर गया होता तो कौन उसके लिये अफ़सोस करता। अजी किसे इतनी फ़र्सत थी। किसी का नहीं।

घास पर पड़े-पड़े देर हो गई। वह सिगरेट पीते-पीते भी ऊब गया। उसे अब क्या करना चाहिये ?

उसके अहसास ने कहा, 'चल रफ़ीक ! तस्वीरें बना। दुनिया में अपना नाम रोशन कर। तेरी जेब में पैसे हैं ही। फिर क्या है। अभी पिच्चानवे रुपये हैं। लड़की भी लालची थी। भला बताओ न ! आखिरी बार मुँह दिखाई के भी पाँच रुपये वसूल कर लिये।'।

और इस विचार से उसे हँसी आ गई। लेकिन या यह विचार कितना बर्बर। कितना क्रूर !

‘बीती बात बिसार दे अब आगे की सुधि लेय,’ गुनगुनाते हुए वह थोड़ी देर बैठा रहा ।

अच्छा तो अब वह चले । कहीं दूर जाकर बसे । फिर से नयी दुनिया गुरु की जाये ।

मुहब्बत !

फिर की जाये ।

नहीं । नहीं ।

लेकिन वह की नहीं जाती ॥ वह हो जाती है

सब बकने की बात है । सब झूठ है ।

फिर !!

फिर कुछ नहीं । वह तो कूँची संभालेगा ।

और उस क्षण उसे लगा वह कलाकार है । और कला के लिये जीता है । कला के सिवाय उसका कोई नहीं । कोई और है ही नहीं ।

कलाकार को सबसे ऊपर होना चाहिये । वक्त के तकाजे आते हैं । चले जाते हैं । कला कला है । उसका क्या बनता-बिगड़ता है । शेख मादी एक जमाने में बादशाह के यहाँ छिप कर घोड़ों के साईस बन गये थे । कोई नहीं जानता था उन्हें । बादशाह के एक शायर ने एक रोज कहा कि यह पेड़ सामने एक पाँव पर खड़ा है । लेकिन फिर उससे आगे की गाड़ी नहीं खिंची । वह तो बोदे बैल की तरह बैठ गया । मगर बादशाह को चैन कहीं । बोला जो कोई इस शेर को पूरा करे तो हम उसे शायर समझें । यह सुनना था कि सादी निकले, कपड़े गंदे थे, गरीबी छा रही थी । मगर चेहरे पर नूर था । बोले, ‘ऐ बादशाह ! यह पेड़ एक पाँव पर खड़ा है । लेकिन क्यों ? यह तो तेरी इज्जत कर रहा है और इसीलिये तेरे इस्तकबाल में ऐसा खड़ा है ।’ वाह वाह ! चारों तरफ शोर मच गया । बादशाह ने कहा, ‘दूँदो, दूँदो । कौन था । किसने यह लाजवाब मिसरा कहा ।’ मगर दूँदो जाओ । अब वहाँ था कौन ? शेख सादी फकीर तबियत के आदमी थे । कहीं के कहीं पहुँच

गये थे । हार कर जब बादशाह का अमला लौटा तो बादशाह ने कहा, 'ऐ दुनिया से प्यार करने वाले शायर ! तेरा ही कमाल था कि बेजाम पेड़ को तूने मेरे लिये एक पाँव पर खड़ा कर दिया । लेकिन बेरहम ! यह भी तो देख कि दुनिया का बादशाह ! तेरे इस्तकबाल के लिये दोनों पाँवों पर जीता जागता खड़ा हूँ ।'

तो ऐसे हांते हैं कलाकार । नाम न मिले, न सही । नाम कौन जानता है । कोई नहीं । मगर उन्होंने अपनी जिंदगी आर्ट के लिये कुर्बान कर दी और उनकी यह कुर्बानी अपने अंदर ऐसा लामिसाल मस्ती का आलम लिये थी कि उसे बयान नहीं किया जा सकता ।

अब दुनिया में है ही क्या । जहाँ तबियत आयेगी, वही चला जायेगा । कौन उसका इंतजार कर रहा है ? कोई नहीं ।

उसने चारों तरफ देखा । सब कुछ उसे अपना लगता था, लेकिन कोई उससे यह नहीं कह रहा था कि तू हमारा अपना है ।

यह भी कैसी अजीब बात थी ! लेकिन इससे क्या होता है । काश वह शायर हांता तो उसकी भूम ही अजीब होती । पर जो नहीं है उसके लिये गिला ही क्यों ! शिकवे तो वहाँ कीजिये जहाँ कोई सुनने वाला बैठो हो । वरना तो उन्हें भूल मारना कहना चाहिये ।

तो भाई उठो रफीक । जिंदगी जिंदादिल्ली का नाम है । वरना... कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ । और आगे की बात ज़बान पर ही रह गई । उसे कहने की भी इच्छा नहीं हुई क्योंकि दिल अब भरा हुआ न था, हल्का हो गया था । अब उसे लगा यह दुनिया बड़ी अच्छी थी । बड़ी हल्की थी हर चीज़ की रयानी, जिसमें किसी तरह मनहूसियत नहीं थी ।

एक बैलगाड़ी वाला जा रहा था ।

रफीक ने रोका, 'ऐ भाई गाड़ीवाले ।'

'हाँ हुआर !'

'चलेगा ।'

‘नहीं हुजूर ।’

‘भाई तू खुद चल ही तो रहा है ।’

‘बैठ जाओ बाबूजी । उतार दूँगा ।’

‘अच्छी बात है ।’

‘पर जाना कहाँ है ?’

‘कहीं नहीं ।’

गाड़ीवाला चौंका । कहा ‘जी हुजूर ?’

पर रफ़ीक गाड़ी में बैठ गया था और गाने लगा था ! उसको, उसके गाने को, उसकी आवाज़गर्दा को देखकर गाड़ीवाला चौंका हँस पड़ा था । पर गाड़ी चलती जाती थी ।

गाड़ीवाले ने जब मुड़ कर देखा तब रफ़ीक वहीं सो गया था । आखिर जब उसने जगाया तो रफ़ीक ने देखा वह किसी गाँव के पास है । जी चाहा की गाँव का नाम पूछे । मगर दिल ने कहा कि रफ़ीक ! तुझे नाम का क्या करना है ? तेरे लिये इस दुनियाँ में नाम की जरूरत ही क्या है ? तुझे तो अपना नाम भी भूल जाना चाहिये क्योंकि कला अलगाव नहीं चाहती, वह तो एकता है, वह तो मुजस्सिम इकाई है ।

गाड़ीवाले के हाथ पर एक रुपया रख कर वह उतर गया । गाड़ीवाले ने आँखें फाड़ कर देखा । सोचा, हो न हो जरूर किसी ऊँचे खानदान का लड़का है मगर वक्त के फेर में पड़ गया है । बोला, ‘ऐहो बाबूजी ।’

‘क्या है भाई !’

‘हुजूर कहाँ जायँगे ।’

‘यहीं रह जायँगे ।’

‘यहीं !!’

‘क्यों क्या डर है ?’

गाड़ी वाला क्या कहे । उसने लाचारी से कहा, ‘लेकिन हुजूर !’

आप यहाँ कहाँ टिकेंगे । यहाँ तो बया भी धोंसला नहीं बनाती, क्योंकि उसे तिनके तक नहीं मिलते । आप मेरे साथ गाँव चलिये ।’

रफीक ने कहा ‘चलो ।’

वह फिर गाड़ी में बैठ गया ।

जब गाड़ी कच्चे रास्ते पर उतरा तो उसका सिर दर्द करने लगा था । वह वहीं फिर सो गया ।

गाड़ी गाँव में एक घर के सामने रुकी और मैला तहमद पहने एक आदमी निकला । उसने गाड़ी वाले से कहा ‘क्यों रहमान किसे ले आया ?’

‘चुप, चुप, कोई नवाबजादा है गुलबा !’

गुलबा भी प्रभावित हुआ । उसने रफीक को जगाया तो छुआ और एकदम कह उठा ‘ऐ दुजूर ! आपको तो बुखार है ।’

रफीक उस वक्त बेहोश था । तीन दिन वह बेहोश सा रहा । गाँव के फकीर साहब आये, सयाना आया । पंडित भी आया । मगर रफीक कभी जोर से हँसता, कभी मस्त नजर आता । मगर वह बेहोश था । गाँव के बुजुर्ग कहते ‘शायद सरसाम न हो गया हो ।’ वे निराशा से सिर हिलाते, बातें करते ।

‘क्यों रहमान यह कौन है ?’

‘मुझे नहीं मालूम !’

‘तू कैसे ले आया !’

रहमान किस्सा सुनाता, कोई बुढ़िया कहती, ‘मेरा चला आया है । इसकी माँ जाने किस हालत में होगी !’

चौथे दिन उसे होश आया । उसने महसूस किया कि वह कुछ कमजोर था । रहमान ने सारा किस्सा बयान किया । धीरे-धीरे वह ठीक हो गया । दिन का सन्नाटा भी गाँवों में रात के सन्नाटे का छोटा भाई होता है । रफीक उठा । रहमान के तकिये के नीचे बीस रुपये रखे और चल पड़ा । अब उसकी जेब में सिर्फ चौहत्तर रुपये थे ।

अरे बहुत हैं। इतने रुपयों से तो वह बंबई तक जा सकता है। मगर अब उसका मन बहुत हल्का है। वह किसी तरह से उदास नहीं है। उसने बीड़ी सुलगाई क्योंकि गाँव में उसे सिगरेट नहीं मिल सकी। बीड़ी पीता वह सड़क पर पहुँचा और चलता रहा, चलता रहा। रात आई तो चाँदनी ऐसी छिड़क गई जैसे ताजमहल का गुबंज बह निकला हो, चारों तरफ पेड़ खड़े थे, पत्ता-पत्ता दोख रहा था। कहीं महुए की खुशबू आ रही थी और बड़ी प्यारी लग रही थी। सड़क सुनसान थी, मगर बड़ी अलसाई सी दिखाई दे रही थी। जिधर देखता था उधर ही दुधिया चाँदनी थी। सामने ही एक पुरानी मस्जिद दिखाई दी। वह उधर ही चल पड़ा।

क्यों न आज रात खुदा की पनाह ली जाये, वह अपनी अँगरेजी की तालीम से पैदा हुआ मजाक अपने आप फरमा उठा।

मस्जिद पुरानी थी, लेकिन साबित थी क्योंकि इधर-उधर के गाँव वाले उसकी देखभाल किया करते थे। उनको उसमें अपनी प्रार्थना पढ़नी पड़ती थी।

रफ़ीक बाहर ही बैठ गया।

वह साच रहा था। कितनी सुन्दर है यह रात। इलाहाबाद में यह मजे कहाँ! यहाँ कुदरत है। उसकी खूबसूरती है। सब कुछ अपने आप में पूर्ण है। उसकी नज़र अपनी छाया पर गई जो बगल की दीवार पर गिर रही थी। अचानक उसे लगा किसी ने पीछे से उसके गले में बाहें डाल दी हैं। वे बाहें बहुत ठंडी हैं। और उनकी हथेलियाँ उसके सीने पर आ गई हैं।

उसने मुड़कर देखा। वहाँ तो कोई न था। हो भी कैसे सकता था? दीवार की छाया में भी तो कोई नहीं था। वह अकेला ही तो था। चाँद इधर था, इधर दीवार थी। और बीच में वह था। अब उत पार चाँदनी गिरती थी ता दोभार पर अँधेरा बनकर टकराती थी, क्योंकि उसका कलाकार सारा चाँदनी को अपने भीतर जड़ किये ले रहा था। उसने

महसूस किया कि वे हाथ सचमुच के हाथ थे क्योंकि जब छूकर देखा तो वे मांस के मालूम दिये। लेकिन वे दिखाई नहीं दे रहे थे। तो वे असली कैसे हुए ?

उसने उन्हें जोर से पकड़कर अपनी गर्दन से अलग करने की कोशिश की और अब उसे लगा कि वे हाथ असल में पानी से गीले थे। और अचानक उसकी जर्गलियों एक समस्त चीज से टकराईं। अँगूठी ! उसकी माँ की अँगूठी ! वह तो इस अँगूठी को कभी नहीं भूल सकता। वह उन हाथों से बृम्हने लगा !

तो क्या यह कुलसूम के हाथ थे !

कुलसूम के !

वह तो मर चुकी थी !

क्या यह उसके हाथ थे !

वह पसीने से तर हो गया। और उसके गले से एक अजीब धर-धराती सी आवाज़ निकली, जो किसी जानवर की चिल्लाहट की तरह गुँज उठी। उसी वक्त दो आदमी मस्जिद के भीतर से निकले। वे फकीर थे। रात गुज़ारने को भीतर सो रहे थे।

‘क्या हे भई,’ एक ने पूछा।

‘कुछ नहीं, कुछ नहीं,’ रफ़ीक ने गर्दन पर हाथ फिराते हुये कहा।

अब वे हाथ वहाँ नहीं थे।

वह घबराया-सा उठा और फकीरों के साथ बैठ गया। उसने उन दोनों को दस-दस रुपये दिये और अब उसके पास सिर्फ़ चौबन रुपये रह गये। फिर उसने कहा, ‘क्या। यह ज़िंदगी पचास रुपये से भी चल सकती है। चार का नंबर कुछ जमता नहीं।’ यह खयाल आते ही उसने उन्हें दो-दो रुपये और दे दिया और कहा, ‘आप लोग कहाँ से आ रहे हैं।’

एक फकीर ने कहा, ‘हम कुस्तुनूनिया की मस्जिद देखने गये थे !’

‘अच्छा !!’

लेकिन फ़कीर ग़मज़दा था ।

‘तो अफ़सोस क्यों करते हैं ।’

‘करते यों हैं कि वहाँ तुरकी में तो आलम ही बदला हुआ है । फिरंगी दुनिया है । इस्लाम का असर ही नहीं रहा । खिलाफ़त क्या उठ गई, सब तरफ़ तबाही-ही-तबाही नज़र आती है ।’

रफ़ीक मोचने लगा । क्या यह भी हो सकता था मगर वह बहस नहीं करना चाहता था । वह डर रहा था, कहीं कुलमुम के हाथ फिर न लौट आयें । कहीं वह लाश उससे फिर न चिपट जाये । इस ख़याल ने उसे इतना डराया कि वह दूसरे दिन से फ़कीरों के साथ ही लग गया और उनके साथ सफ़र करने हुये उसने अपना सारा पैसा तो उन्हें दे ही दिया, बल्कि खुद भी फ़कीर जैसा ही हो गया । अब वह कभी अकेला नहीं रहता । अगर कभी ऐसा मौका पड़ जाता तो वह भागता और लोग चौंकते । फ़कीरों से हटा तो वह कंजरा में पहुँचा । वहाँ हमेशा दिन-रात का संग उसे मिला । लेकिन एक दिन वह रमज़ानी और गुलनार के साथ बाज़ार गया । लौट तो बाकी कंजरा को पुलिस पकड़ ले गई थी । रमज़ानी और गुलनार ठहरे मियाँ, बीबी । रात को सो रहे तो वह क्या करता । वह सड़क पर निकला । वहाँ भी सुनसान था और अभी वह अपने डेरे पर पहुँचा भी नहीं था कि वही ठंडे हाथ उसकी गर्दन के चारों तरफ़ थे । वही आलिंगन था । बड़ी मुश्किल से उसने अपनी गर्दन हुड़ाई और बेतहाशा भागा । जब वह डेरे पर पहुँचा वह एकदम मियाँ, बीबी के डेरे में घुस गया । दोनों नाराज़ भी हुये, मगर उसकी वदशियाना हालत देख कर चुप हो रहे । वह इस क़दर डरा हुआ था कि उसके मुँह से बात तक नहीं निकलती थी !

मगर यह कब तक चलता । अब उसे अक्सर ऐसा लगता कि वे बाँहें उसकी गर्दन पर पड़ी हैं । वह सूँवकर काँटा हो गया, मगर कहीं नजात नहीं मिलती थी । आखिर उसने तय किया कि वह बम्बई चल जायेगा जहाँ इतनी भीड़ होगी, इतनी भीड़ होगी कि वह कभी अकेला

नहीं रहेगा। फुटपाथ पर सोयेगा जहाँ सैकड़ों आदमी सोते हैं। कहाँ रहेगा वह अकेला, इस खयाल ने ही उसमें मस्ती भर दी। वहाँ वह फिर बड़ा-सा स्टूडियो खोलेगा। और स्टूडियो में हमेशा नौकरों को रखेगा। कभी अकेला नहीं रहेगा। वहाँ उसकी तन्दुरुस्ती भी ठीक हो जायगी और वह फिर रंगीनी में डूब जायगा।

इस सबके सोचते ही वह खिल उठा। आज उसने जाकर रमज़ानी से शराब माँगी तो गुलनार हँसी। उसको भी ताज़ुब हुआ। वह बड़े अचरज से उसे देखा करती थी।

शराब पीकर उसने हुड़दंग भी की और स्टेशन चल पड़ा। रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठ गया। टिकट बाबू आया तो वह सीट के नीचे छिप गया। मगर टिकट बाबू काँझा था। उसने पकड़ ही तो लिया।

‘टिकट !’

‘नहीं है !’

‘तो क्या गाड़ी तुम्हारे बाप की है !’

उसे गुस्सा आ गया। अँगरेज़ी में बातें करने लगा। उन दिनों क्रान्ति-कारियों को पकड़ा जा रहा था। उसे पकड़कर स्टेशन के थाने में बंद कर दिया गया।

उसका गुस्सा नहीं थमता था। वह कोठरी के सीखन्तों से देखता, तड़पता रहा। बल खाता रहा।

आखिर थक गया। और आराम से ज़रा लेटने ही वाला था कि उसके रोंगटे खड़े हो गये। वही ठंडे हाथ उसकी गर्दन में पड़े थे। उसने देखा। पीछे कोई नहीं था। छू कर देखा। वही हाथ थे। वही ठंडे हाथ। उँगलियाँ गीलीं थीं, उसने और छुआ। वही उसकी माँ की अँगूठी थी ! तो यह कुलसुम का ही हाथ था !

वह ठीक ही तो कहती थी।

वह खुदकशी कर लेगी, ताकि वह रफीक के पास रह सके। उसने खुदकशी की थी। तब तो वह बुरी नहीं थी।

उसकी आँखों के वही मोती अब फिर झलमलाने लगे, वही मुस्कान कमल की पंखुरियों खोलने लगी। रफीक जानता है वह उसकी कुलसुम के ही हाथ हैं, लेकिन एक मुर्दे के हाथ हैं, एक लाश के हाथ हैं।

सीखचों के बाहर सन्नाटा है। रेल चली गई है और अभी उसके आने में देर है। यहाँ कोई सिपाही होगा। वह आ सकता है !!

रफीक ने आवाज देने की कोशिश की, मगर आवाज गले में भिँच गई जैसे सपने में आवाज गले में ही घरघराती है। और कुछ नहीं है। वही सन्नाटा है, वही दमघोड़ खामोशी ... और गले में वही ठंडे हाथ हैं वही गीली उँगलियाँ, वही माँ की हीरे वाली, सोने के सुगंध वाली आँगूठी ... और वे कुलसुम के हाथ हैं एक लाश के हाथ हैं

चारों तरफ अँधेरा छा गया है, मगर अब उन हाथों का संगमरमरी गोरापन दिखाई देने लगा है। मुहब्बत के तारों से आवाज आने लगी है, भँकारती हुई, अद्यावधि दिगंतों में नई गुँज मारती हुई ... वह आवाज ही भूम कर इकट्ठी होती है ... वही गोरापन बनती है ... और वह रङ्ग फिर हाथ बन जाता है ... वही हाथ ... कुलसुम के हाथ ...

सुबह जब सिपाही ने आकर देखा तो लौट गया, दरोगाजी को लाया। देखाभाली हुई। दरोगा ने अपनी रिपोर्ट में लिखा; रात एक बिला टिकिट सफर करने वाला मुफलिस जो कि पागलों की सी हालत में था, हवालात में अपने आप मर गया। लावारिस होने की वजह से उसकी लाश सरकारी खर्च पर दफन की जाये...

और कुछ नहीं।

इस बार धीरूमल ने धीरे से कहा, 'यह भी कुछ कमजोर कहानी है जो जाहिर करती है कि रफीक को वहम हो गया था। मैं इससे भी अच्छी कहानी सुना सकता हूँ।

सुरेश्वर ने धीरे से मुस्करा कर कहा, 'तुम कहो, फिर मैं भी एक सुनाऊँगा ।'

धीरूमल कहने लगा :—

३

नीलम पहाड़ की पोंच चोटियों थीं जिनके अलग-अलग नाम थे । उनके बीच में घाटी थी और ऊपर की तरफ था एक भवन । सूरज की तेज रोशनी उसकी खिड़कियों पर पड़ती और पहाड़ी इलाके का आत्मान अपनी रंगीन छायाएँ डालता । रात को सर्दी पड़ती और दिन में भी कभी वहाँ गर्मी नहीं पड़ती थी । जिसने मकान बनवाया था लोग उसे समारू कहते थे । वह अकेला रहता था और देखने में बड़ा गम्भीर था । उसकी सराय में कोई भी नहीं ठहरता था । उसका एक ही साथी था, जो देखने में भूयानी मालूम देता था । उसका नाम कोई नहीं जानता था क्योंकि समारू, उसे सिर्फ उस्ताद कहता था । और इसके अतिरिक्त उसका नाम जानने का कोई और रास्ता ही नहीं था । उस्ताद तो देखने में ऐसा लगता, जैसे उसका चेहरा पत्थर का बना हुआ था । समारू कभी सामान नहीं खरीदता था । आस-पास के गाँव वालों ने उस्ताद ही कुछ खरीदारी करता था और इतना कम बोलता था कि ज्यादा बोलने के आदी गाँववाले कभी उससे खुश नहीं होते थे । उसने भी कभी समारू के बारे में कुछ नहीं बताया । यह तो कहना ही बेकार है कि अपने बारे में तो वह कुछ बताता ही नहीं था ।

सालभर उन्हें आये हों गये और अड़ोस-पड़ोस के गाँव वालों को उनके बारे में कुछ पता ही नहीं चला । उनकी जिज्ञासा दिन पर दिन

बढ़ती ही गई। आखिर उतनी ऊँचाई पर उन्होंने घर बनाया क्यों था, जहाँ बादल दिन में भी तेरते नज़र आते थे और आस्मान में ऊँचाई से उतरते वक्त गोध बैठा करते थे जो कि वे वहाँ से अपनी तीर सी दृष्टि में धरती की नीचाइयों को नापा करते थे।

पहाड़ी लोगों में कुछ यह कहते थे कि समारू असल में नेपाल के राज खान्दान का व्यक्ति था। उन्हीं दिनों सड़क बनाने वाले कुछ कुली अपने इंजीनियर के साथ आये थे। इंजीनियर ने उस मकान को देखा तो कहा, 'यह रोज़ा मुलहोलेन्ड की कहानी वाला मकान यहाँ कैसे आ गया।' लेकिन पहाड़ी लोग कुछ नहीं समझे। वह तो समारू के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ करते। बेकन ने कहा है कि एकांत में दोही रह सकते हैं—या तो भगवान या जानवर ! गाँव वाले बेकन को तो नहीं जानते थे मगर जीवन का यह सत्य तो इतना सहज साधारण है कि कोई भी इसे प्रगट कर सकता है। चुनों चे हुआ भी यही। आखिर एक धारणा यह बन गई कि असल में यह नेपाल के राजखान्दान का आदमी है और नेपाल के तीन सरकार और पाँच सरकार दोनों ही इस नाराज़ हैं। अतः यह यहाँ अपनी बची-खुची दाँल लेकर आ गया है और क्योंकि इसे बहुत ज्यादा अफ़सोस है, यह जिन्दगी से ऊब गया है। इसलिए यहाँ दुनिया की नज़र से दूर आकर बस गया है। इसी तरह की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उसके बारे में मुनी गई कि यह खूनी है, यह भयानक आदमी है मगर उड़ती बात के पाँच कहों ! ठिकी कहीं नहीं। इसी तरह दो साल और बीत गये, और वह चर्चा भी ठंडी पड़ गई। सिर्फ़ भेड़ें चराने वाला कोई लड़का देखता कि लंबा-चौड़ा, ऊनी कपड़े और टोपी पहनने वाला समारू बंदूक कंधे पर धरे इस पहाड़ी रास्ते से उस पहाड़ी रास्ते पर जा रहा है। या जब तूफ़ान बहुत गरजता हो कोई अंधेड़ पहाड़िन अपने घर में कह उठती, 'हे सैम ! जब यह हालत यहाँ है तो सामारू के सिर पर क्या हालत होगी। वह जगह तो बहुत ही ऊँची है !!

बीच की घाटी में सबसे बड़ा मकान कर्नल सावंत का था। सावंत ने

विलायत में कई बरस गुजारे थे । अब वह रिटायर हो गया था । और अपने देश लौटकर आ रहा था ।

समारू ऊँची चोटी के पास की चट्टान पर चढ़ कर उस मकान की ओर देखा करता था । वह विशाल मकान अपनी भारी दीवारों लिये खड़ा था और उसके तीनों ओर सुन्दर बगीचा लगा हुआ था । चौथी तरफ पहाड़ था । या कहना चाहिए वह एक ओर पहाड़ के ऊपर बसा हुआ था और जहाँ वह पहाड़ जमीन से लगता था वहाँ से गरम घाटी शुरू हो जाती थी । और गरम घाटी में बहती हुई बड़ी नदी का निर्बोष उठ कर पहाड़ों से टकराता हुआ उस विशाल भवन की खिड़कियों पर झूमते हवा के झोंकों से लड़ने लगता । अभी तक उस मकान में नौकर दिखाई दिया करते थे और समारू की निर्निमेष दृष्टि देर तक उस मकान को देखती रहती, यहाँ तक कि सूरज की आखिरी किरणें भी हवा के झोंके समेट कर नदी की गहराइयों में डुबा देतीं और आकाश की पृष्ठभूमि पर विशाल-काय समारू चट्टान पर खड़ा हुआ उस चट्टान का ही एक हिस्सा बन कर दिखाई देने लगता ।

कनल सावंत के आने की खबर इधर आसमान में उड़ी तो वह समारू तक भी पहुँची और उसने देखा कि कई मजदूर वहाँ मरम्मत करने लगे और बड़ई आकर दरवाजों और चूलों को ठीक करने लग गये । बादलों के बीच खड़े हुए समारू ने सब देखा और उस्ताद को पुकारा ।

उस्ताद धीरे-धीरे आया ।

‘देखते हो ?’

‘हाँ !’ उस्ताद ने कहा ।

दोनों खामोश रहे । फिर किसी ने भी कुछ नहीं कहा । दोनों चुपचाप नीचे की तरफ देखते रहे । मजदूर आते थे, बड़ई काम करते थे, हवा में वहाँ शोरगुल था और समारू का उदास-सा मकान पहाड़ों की विशाल काया में छोटा सा उस वैभव को देखकर जैसे संकुचित हो उठता

था। दूर से वे लोग समारू को ऐसे लगते जैसे बहुत सी चीटियाँ इधर-उधर चल फिर रहीं थीं। वे चीटियाँ ही तो थीं। उनमें से ऊँचे खानदान का आदमी कोई भी नहीं था। वही ऊँचे खानदान का आदमी था। उसे इसी का गर्व था और इसलिये वह किसी को भी मुँह नहीं लगाता था। वह अपने दिल में कितने दर्द छिपाये था, यह इसी से प्रगट था कि वह अपने आपको दुनिया से छिपाता था।

जब वह मकान बनने लगा तब उस्ताद ने एक दिन आग जला कर तापते हुए कहा 'सर्दार !'

उस्ताद समारू ने पलट कर कहा 'उस वक्त यह बहुत ही कठोर लग रहा था।'

'जानते हो वक्त आ रहा है ?'

'हूँ।'

उस्ताद ने अपनी जेब में हाथ डाला 'और एक गॉठ निकाली। वह मुश्क थी। असली कस्तूरी। काले हिरन की, जिसके सिर पर सींग नहीं होते।

'मुश्क !' समारू ने हाथ बढ़ा कर कहा।

उस्ताद ने उसे गॉठ देकर कहा 'तोड़ दो इसे।'

समारू ने उस गॉठ को ऐसे लील दिया जैसे उसके हाथ में कोई लीची थी, जिसका लीलना कोई कठिन काम नहीं था। उस्ताद खुश हुआ।

'रात को चले जाओ आज।'

'फिर ?'

'पेड़ी के मन्दिर में जाओ और इसकी धूनी लगा दो और फिर पश्चिम की काली चट्टान पर जाकर अपने पितरो की पूजा करो। बलि देनी होगी।'

उस्ताद का वह कठोर स्वर गूँज उठा। समारू ने सिर झुकाया और चुपचाप भीतर चला गया।

जाड़े के दिन थे। बाहर तूफान के साथ बर्फ गिर रही थी। उसने

चमड़े के मोटे कपड़े पहने और खतरनाक दर्रे की तरफ उतरा। फिर उसे याद आया तो लौटा और एक मोटा बकरा उसने बाँध लिया और कंधे पर लिये चल पड़ा। उसकी बड़ी बन्दूक उसके कंधे से चमड़े की पेटो में बैधी लटक रही थी। उसमें गोली भरी हुई थी और उसके बाँये हाथ में चौड़े फलक का लोहे का तेज फरसा था, जिसको उठाने में कभी ताकत की जरूरत थी। समारू उतरना-चढ़ता, भारी बकरे को लिये उस गिरती बरफ, उस तूफानी हवा की पुकार और ऊबड़-खाबड़ घनघोर अंधेरी में चलता रहा। कितनी बार उसे चढ़ना पड़ा, कितनी बार उसे भयानक पगड़ण्डियों से उतरना पड़ा और किस तरह वह अंत में ऐड़ी के मन्दिर में पहुँचा और उसने कोने में पड़ी सूखी लकड़ी लेकर आग जला दी और मुश्क की गाँठ उसमें फेंक दी। मन्दिर खुशबू से महक गया। ऐसी गर्मी फैल गई कि उसकी और बकरे की शिराओं में नया खून दौड़ने लगा। उसके बाद वह बकरे को लेकर ऊपर चढ़ने लगा। अब तूफान उसके मुँह पर था और ऊपर चढ़ना और भी कठिन था लेकिन अपने भीम शरीर को लेकर वह विकराल शक्ति से ऊपर चढ़ता ही चला गया जहाँ उसे अंत में आत्मान के नीचे सबसे ऊपर पश्चिम में काली चट्टान मिल गई। सारी शक्ति लगा कर वह उस पर चढ़ गया। तूफान इतना जर्बदस्त था कि उसको बकरा उतारने के बाद अपना मुँह एक जगह को बरफ की मार से बचाने के लिये हाथों से ढँक लेना पड़ा। ठंड से उसके नाखून नीले पड़ गये थे। बकरा ठंड से बेहोश सा बैठा था। वह उन तूफानी भाँकों की भीड़ के पाँवों के नीचे कुचला हुआ सा कभी-कभी मियिया उठता था।

उस घनघोर अंधकार में समारू एक बार जोर से पुकार उठा, 'पतरों ! आओ ! मैं समारू ! किंचुल का वेठा, बांगा का नाती, तुम्हें पुकार रहा हूँ।'।

उसका वह कठोर स्वर तूफान के सीने को फाड़कर अंधेरे जैसे कालेपन में मिल गया और ऐसा लगा की दूर की घाटियाँ तक अनवरत निनाद से प्रतिध्वनित होती हुई दहाड़ने लगीं, जैसे पर्वत की तुंग

शिलाएँ और बज्र कठोर चट्टानें अब सरकने लगीं । और तब बकरे की भिमियाहट उस क्षण महीन सी लगने लगी । समारु फिर चिल्लाया, 'आओ मेरे पितरो ! मैं बलि लाया हूँ । बलि ! अपनी लहू की प्यास बुझा लो । मेरी गरीबी दूर करो । देखो मेरी रंगां में तुम्हारा ही पवित्र रक्त बहता है, जिसमें अब भी हूण राजकुमारी के रक्त की ललाई है, जिसमें अब भी भोटदेश के व्यापारी की सलामी लेने की गरिमा भरी है । तुम्हारे इस वंशज को भाग्य ने आज भिखारी बना दिया है । लेकिन इसने आज तक शाही जिन्दगी बिताई है । किसी से भोख नहीं माँगी, किसी के सामने सिर नहीं झुकाया । आज तक शिकार किया है, किसी नीचे खान-दान का आदमी को मुँह नहीं लगाया ।

तूफान गरजा, 'नहीं लगाया ।'

पहाड़ चिल्लाने लगा, 'नहीं लगाया ।'

उस समय आकाश और पृथ्वी में एक ही अखंड रोर उठने लगी । महानदी की उत्ताल तरंगें जैसे आपस में प्रचण्ड शक्ति से टकराने लगीं और समारु उन्माद से ठहाका लगा कर हँसा । उसका वह हास्य शेरों के तरुण झुण्डों की तरह कराहते तूफानी दैत्यों पर झपटा और उनके सीने को फाड़-फाड़ कर उनका रक्त पीने लगा । तूफान धायल-सा अपना सिर बार-बार गुहाओं में छिपाने की कोशिश करने लगा ।

समारु ने आगे बढ़ कर फरसा सँभाला और बकरे को खोल कर खड़ा किया । और ज्योंही फरसा उठा कर भरपूर हाथ मारा उसका फरसा धरती पर गिरा और फलक अपनी शक्ति की तेज़ी में जाकर पथर काट कर भीतर गड़ गया । समारु ने उसके डंडे को खींचा तो लोहा धरती में रह गया । बँट हाथ में आ गई । बकरा मरने के डर से कूद गया था और अपने को न सँभाल सकने के कारण वह उस त्रिभुवन विलोकिर्न ऊँची चट्टान से गिरकर खड्ड खाइयों में अतलांत गहराई में कहीं खण्ड-खण्ड हो गया था ।

समारु इस अपशकुन से पागल सा अपने बाल नाँचने लगा । उसने

गुस्से से अपने कपड़े फाड़ लिये और वह पिशाच जैसा भीमकाय व्यक्ति वहाँ रोने लगा। उस समय तूफान अपनी मस्ती में ऐसे हँसा जैसे उसके हजारों सिरथे, जिनसे वह समारू को घेर चुका था और अट्टहास करता हुआ उसके कानों को फाड़े दे रहा था। समारू को क्रोध आने लगा। उसने बंदूक खोली और चारों दिशाओं में अधाधुंध गोलियाँ चलाने लगा, यहाँ तक की गोलियाँ खत्म हो गईं और फिर वह उतरने लगा। इस बार वह हारा हुआ था। जब वह ऐड़ी के मन्दिर में पहुँचा, मुश्क जल चुकी थी। वह वहीं सामने गिर पड़ा। उसमें शक्ति नहीं थी। देर तक पड़ा रहा। तब आग ने उसमें जिंदगी लौटाई। उसने आँखें उठाकर देखा। आग की दूसरी तरफ एक मादा भेड़िया बैठी थी और उसके पास उस न छुंटे-छुंटे बच्चे थे। समारू को दया आई। वह उठा और अपने घर वापस लौटा।

उस्ताद उस समय एक बड़े उल्लू को शराब पिला कर लोहबान की गंध लगाये बैठा था और उसके सामने आदमी की खोपड़ी की चिकनी हड्डी का पात्र रखा था जिसमें उसने शराब भर रखी थी। वह दो बार उसमें से पी चुका था और एक बार उसने उल्लू को उससे स्नान कराके उल्लू के माथे पर सिंदूर भी लगा दिया था।

समारू वहाँ पहुँचा तो बूढ़े ने कहा, 'सरदार ! बलि दे आये।'

'नहीं !'

एक शब्द इतनी ज़ोर से गूँजा कि उस्ताद धबकाकर उठ खड़ा हुआ। सहसा ही उल्लू हँसा। उसकी डरावनी आवाज उस मकान में जब गूँजी तब तूफान ने झुक कर जैसे जय-जयकार किया। वृद्ध ने अपना बगल में रखा त्रिशूल उठा लिया और जोर से उल्लू के सीने में धुसेड़ दिया। उल्लू निर्जीव होकर गिर पड़ा।

उसके बाद सरदार की जान में जान सी आई। अपनी खूँखार आँखों से देखते हुए उसने कहा, 'उस्ताद !'

'हाँ। सरदार ! उस पर देवता आने वाला था।'

‘हूँ ।’

‘अगर वह आ जाता और देखता कि तू बलि देकर नहीं आया है, तो वह तेरी बलि ले लेता । तू कितना भी ताकतवर क्यों न हो समारू ! देवता की तो तू बराबरी नहीं कर सकता ?’

वह लोहे का सा लगनेवाला, चट्टान का सा ठुकड़ा, समारू उस समय भयभीत होकर काँप उठा । उसने धुटने टेककर कहा ‘ऐ देवता ऐड़ी ! तू मुझ पर दया कर ! मुझ पर दया कर ।’

इससे अधिक वह कह नहीं सका ।

उस्ताद ने एक पास का छोटा बकरा खोला और उसको काट कर उसके लहू से जलता लोहबान बुझा दिया और वह वहाँ की हर वस्तु पर रक्त के छींटे देने लगा ।

‘बच गया ! बच गया !’ उस्ताद ने कहा ।

समारू ने कहा, ‘उस्ताद !’

‘क्या है ?’

‘फिर ?’

‘फिर क्या ?’

‘तो कुछ नहीं होगा ।’

‘कुछ भी हो सकता है । ऐड़ी तेरी तरफ नहीं है ।’

‘तो क्या हैरू भी नहीं होगा !’

‘नहीं । वह उसका दोस्त है ।’

‘ग्वाला ।’

‘अबकी बार जो असफलता मिली है, वह चेतावनी है । उसमें दखल-न्दाजी देने की कोशिश मत कर चला जा ।’

समारू उठ कर चला गया । तब वृद्ध उठा और उस स्थान को साफ करने लगा । उसकी आँखों में पानी छलक आया था । यह सरदार का कुलगुरु था और आज उसने अपने यजमान की हार को निश्चित जान लिया था ।

उसका मन आज छुटपटा रहा था । और समारू कमरे में औंधा पड़ा धरती पर कभी कभी सिर पटक उठता था । उसके बाल भबरे से बिखर गये थे ।

बसंत भट बीत गई । पहाड़ों में नमी चहल-पहल व्याप गई । आस्मान का रंग पहले से अधिक खुल गया और सलेटी छायाएँ पहाड़ों की चटकीली नारंगी पीठों पर पड़ने लगी, जिससे सब कुछ बड़ा सुहावना लगने लगा । घना कुहरा साँझ से सवेरे तक छाया रहता, दिन में गहराइयाँ से बादल चढ़ते हुए लगते और पल-भर में ही ऊँची-ऊँची जगहों का रुई के से सफेद गालों से पुरा देते और फिर जहाँ लगते वहीं गीली नमी दे जाते । पत्ते धुल जाने पर अब अपनी हरियाली से बड़े भले लगते । नीचे की घाटी तो ऐसी चमकती जैसे पन्ने और नीलम बिखेर दिये हों, जिन पर कभी-कभी रंगीन आसमान की विद्रुम छाया पड़ती तो उपत्यका और अधित्यका दोनों ही अपने मनोहर रंगों से नई आभा भरती और कान्तार में हवा मर मर सी करती हुई धीरे-धीरे पथरां को जैसे पकड़-पकड़ कर ऊपर, चढ़ती ।

समारू अपने भयानक कुत्तों की जंजीरों को एक हाथ से पकड़, बंदूक कंधे पर धरे देख रहा था । उसने देखा आकाश में आग के फूल उड़ने लगे और धौंय-धौंय से घाटी थरथराने लगी ।

कर्नल सावंत आ गया था । इसका तो यही अर्थ हुआ । वह चश्मान से उतरा और उसने कुत्ते खोल दिये । कुत्ते कर्कश स्वर से भौंकने लगे और जब कि आतिशबाजियों से कर्नल का मकान गूँज रहा था, समारू सुनसान पहाड़ों मार्ग पर बढ़ा चला जा रहा था । वह ऐसे बियाबान में जा निकला जहाँ इंसान के पाँव ही नहीं पड़े थे और वहाँ की चश्मान मोत की तरह ठंडी थीं । नंगे पर्वतों की श्रेणियों के नीचे उसके कुत्ते भौंकते हुये भागने लगे और वह भी अंत में दूर से एक हिरन को देखकर भागने लगा । एक जंगली घोड़ा उसकी दौड़ का देखकर सरपट भागा और चश्मान से गिरकर मर गया । उसका ध्यान हट गया । परंतु

कुत्ता ने हिरन का जां दाबा और तुरंत ही फाड़ दिया। समारू के हांठों से एक खुशी की आवाज़ निकली। उसे पास देख कुत्ते हट गये। लेकिन समारू को यह अच्छा नहीं लगा। उसने तुरंत अपनी लंबी खुफ़री निकाली और हिरन को काट दिया। उसने एक-एक टुकड़ा करके कुत्ता के आगे फेंक दिया। बड़ी ज़ोर की भूख लग रही थी। अंत में एक टुकड़ा वह भी खाने लगा। कच्चा गोश्त जिसमें से लहू टपक रहा था, उसे खाते हुये देख कर कुत्ता के मुँह से गुरगुराहट की आवाज़ हुई। उसे भी बड़ा मज़ा आया।

जब वह लांटा आसमान में गिद्ध मँडरा रहे थे। वे बचे-खुचे को गवा जाना चाहते थे।

रात हंा गई थी। घर पहुँचने पर उसने देखा कि कनल सावंत के घर में दीपक जलाये गये थे, मालिक के आने की खुशी थी और ऐसे मालिक की जो कि बरसों बाद आया था। बहुत ऊँचाई पर एक बाँस गाड़कर उस पर एक कंदील चढ़ाया गया था। समारू ने देखा तो उसके मन में एक विचित्र सूनापन-सा छा गया। भीतर गया तो देखा कि उस्ताद आज एक अजीब-सी खजूर के पत्तों पर लिखी किताब को चिराग की मद्धिम रोशनी में पढ़ने की कोशिश कर रहा था। यहाँ काफी टंड थी और उस्ताद ने आग सुलगा रखी थी। उसका कसैला धुँआ समारू की आँखों में फिर लगा। उस्ताद ने उसकी ओर देखा और कहा, 'सरदार !'

परंतु वह चुप बैठा रहा।

‘बोलते क्यों नहीं ?’

‘क्या बोलूँ !’

‘मैंने दूसरा रास्ता खोजा है।’

‘क्या ?’

‘मैं दक्खिन जाऊँगा !’

उसने आँखें उठाईं।

‘दक्खिन यम की दिशा है ।’

समारू ने सिर्फ दुहराया, ‘यम !’

‘यम,’ उस्ताद ने कहा ।

‘फिर ?’

‘फिर वहाँ पुराने ज़माने की एक मूरत को खोज निकालना है ।’

‘कैसी मूरत ?’

उस्ताद ने कहा, ‘किताब कहती है तारा की मूरत ।’

‘तारा !’ समारू के जिस्म में सनसनी फैल गई ।

‘तारा की मूरत,’ बूढ़े ने कहा । उसकी पतली आँखें, उसके गालों की उठी हुई हड्डियाँ उसकी टोड़ी पर बीस बालों की वह दाढ़ी, उसकी मूँछें जो नाक के नथुनों की बगल से उगना शुरू हुई थीं, समारू उन सब को घूरने लगा । ‘आदूरों की खोह के भीतर जाने पर ही वह मिलेगी ।’

‘लेकिन उधर का तो रास्ता भी बन्द हो गया है । डेढ़ सौ बरस से उधर कोई गया भी नहीं है ।’

‘यही तो बात है सरदार ! तेरे परबाबा वहाँ अपने हाथ से पूजा करने जाते थे । उनके कुलगुरू मेरे परबाबा उन्हें ले जाते थे । उसके बाद एक बार पहाड़ का बड़ा-सा पत्थर ऊपर से टूट कर गिरा और वह सँकरा रास्ता बंद हो गया । उस वक्त मेरे और तेरे पुरखे इतनी ऐयाशी में डूबे हुये थे कि उनके घर में शराब बहा करती थी और नीच जातों की औरतें उनके घरों में खुशबुएँ लगाकर दावतें उड़ाती थीं । तारा ने उस पाप को देखकर कहा कि मैं इनका मुँह भी नहीं देखूँगी और उसने अपना द्वार बंद कर दिया । मद के अंधे हमारे पुरखों ने इस पर ध्यान नहीं दिया । अगर उसी वक्त वे रास्ता बनवा कर माफी माँग लेते तो यह नौबत कभी नहीं आती । मेरा बाप और तेरा बाप एक दिन भूदान भागे थे, क्योंकि इसी कर्नल के बाप ने इनकी सत्ता जायदाद कर्ज़ दे-देकर हड़प ली थी । उनकी पवित्र स्त्रियाँ उनके साथ गईं

तू मुझसे बीस बरस बाद पैदा हुआ। मेरा बाप पहले मरा, फिर तेरा, और उसके बाद मेरे ही ज़िम्मे रह गया कि मैं तुझे तैयार करूँ और खोया राज फिर से पाऊँ। नीलम पहड़ की पाँचों चोटियों के बीच की ज़मीन हमारी है। जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्रमा है तब तक वह हमारी है। मेरी नॉ कहा करती थी कि अब भी सात पिशाच पाँचों चोटियों पर एक न एक दिन साल में रोजे जाते हैं कि वह पवित्र वंश नहीं रहा। उनके दुख से हवा लाल हो जाती है और खूनी आँधी धरती धरती है। यह तो तू जानता है, क्योंकि मैंने और तूने ऐसे दिनों हमेशा खून से धरती लीपकर दूर-दूर तक की चोटियों में कौड़ियों फेंकी हैं।' बूढ़े का कठोर स्वर अब और उठा। और अब पुरोहित के वंश की पुकार हुई है, 'मैं ही जाऊँगा।'

उस समय समारू के भी रांगटे खड़े हो गये।

'वहाँ जाओगे!'

'तारा की मूरत टूटने।'

'पागल हो तुम।'

'पागल!' बूढ़ा ने पास पड़ा लोहे का छुरा समारू को मारा और चिल्लाया, 'नीच! तू देवता का अपमान करता है।'

समारू स्तब्ध खड़ा रहा। उसकी शक्ति को जैसे हवा ने छीन लिया। उसके पाँव धरती में गड़ से गये।

बूढ़ा उठा और चल पड़ा। समारू उसे रोक नहीं सका।

कुछ ही देर में उसने अजीब सी आवाज सुनी। वह कुत्तों के साथ निकला। देखा, एक रीछ बूढ़े से लड़ रहा था। बूढ़ा बड़ी वीरता से लड़ रहा था! लेकिन इससे पहले कि समारू कुछ कर सके, इससे पहले कि उसके कुत्ते कुछ कर सकें, वे दोनों लड़के और फिर आँधरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। एक बार पशु और मनुष्य के विकृत चीत्कार की आवाज आई और फिर सब शान्त हो गया। आज समारू अकेला रह गया था।

जब वह ऊपर लौटा अंधेरे में दीप जल रहा था और खजूर की किताब वहीं रखी थी। समारू के कठोर हाथ ने उस किताब को तुचल दिया। वह बाहर आया। ऊँची कन्दील दिखाई दी। इस वक्त धू-धू करके बन्दूकें चल रही थीं। हवा में फायर किये जा रहे थे। उसने अपनी बन्दूक सँभाली और धोंय से गोली चलाई। उसी वक्त नीचे ने भी गोलियों चलीं। किसी को भी समारू के गोली चलाने का बात का पता नहीं चला, लेकिन सबसे ऊँची कन्दील भक् से फट गई और उसमें आग लग गई। समारू का विकट हास्य उस निर्जन में गूँज उठा। अब वह लड़ना चाहता था। परन्तु उसके पास कोई नहीं था। तब आनन्द में वह उधर गया जहाँ उसके मुर्गे, मुर्गिया थीं। उसने सबसे बड़े मुर्गे की गर्दन पर अपना मोटा हाथ डाला और उसे मरोड़ कर फेंक दिया। फिर बकरी का एक बच्चा लिया और कुत्तों के आगे डाल दिया।

उस में भीषण प्रतिहिंसा थी। आज वह थम नहीं रही थी। क्या करता। तब वह उस अंधेरे में भयानकता से पहाड़ों में भागने लगा। तब तक भागा जब तक कि वह थक कर चूर नहीं हो गया। आखिर चलना कठिन हो गया। तब वह बैठ गया और उसने अपनी सारी गोलियों निकालीं और धोंय-धोंय करके आम्मान की ओर छोड़ दीं। वह आराम से लेट गया। आँखें बन्द कर लीं। कुत्ते इधर-उधर चक्कर काटने लगे। अचानक उसकी आँख लग गई। उसने देखा। रीछनी हँदती हुई इधर आ गई थी और उसके खौफनाक कुत्ते उस पर झपट पड़े थे। वह कुत्तों को ललकारता रहा। कुत्तों ने आखिर उसे फाड़ डाला। तब समारू हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ और इस शिकार को नीचे ढ़कल कर अपने घर आ गया।

आज पहली बार वह इस घर में अकेला रह गया था।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। कुहरा अब और घना होने लगा क्योंकि बरसात समाप्त हो चली थी ! हवा अपनी दिशा बदल कर चलने लगी। शाम हो गई थी। कुछ ही देर में घना कुहरा छा गया।

समारू अपने घर से दूर था, लेकिन यह पर्वत के चम्पे-चम्पे को जानता था और इतना आदी था कि उसे तूफान, आँधी, कुहरा कुछ भी परेशान नहीं करते थे। वह घर लौट रहा था कि उसे एक दर्दनाक आवाज सुनाई दी जो उस घने कुहरे में से सुनाई पड़ रही थी। उसने ध्यान लगाया और तुरन्त ही उस आदमी के पास जा पहुँचा जो कि रास्ता भूल कर चिल्ला रहा था और जिसे मौत हर कदम पर घेर रही थी। समारू उस आदमी को कुहरे में से मुरझित भाग में ले आया और उसने उसी कठोर आवाज में कहा, 'मेरे पीछे आओ !'

घंटे भर तक वे चलते रहे।

'कहाँ जाना है ?' उसने पूछा।

'नीचली घाटी में।'

'तो उतरों।'

समारू आगे-आगे चला और वह आदमी पीछे-पीछे यहाँ तक कि सामने कर्नल का भीम भवन था। ऊपर से वह इतना बड़ा नहीं लगता था जितना यहाँ से। और समारू का खून उसकी कनपटियों में बजने लगा।

वहाँ रोशनी हो रही थी। भवन का पिंजुवाड़ा था, जिधर पहाड़ था और उस आदमी को हाथ का सहारा देकर समारू ने उतार दिया और चट्टान पर वह मुड़ने वाला था कि उस आदमी ने कहा, 'सुनो !'

वह ठिठक गया।

'क्या है ?'

'मैं कर्नल सावंत हूँ,' उस आदमी ने कहा, 'तुम कौन हो ताकि मैं अपने जीवन दान देने वाले को याद रख सकूँ ?'

सावंत ने अपने रक्त की ओर देखा। एक भीमकाय व्यक्ति चट्टान पर हठ चरण रखे खड़ा था।

'कर्नल सावंत !' समारू ने अजीब तरह से दृढ़ता से कहा, 'तुम्हारे पुरखों ने मेरे पुरखों की जायदाद कर्ज में हड़प ली थी। और कई गुना

सूद लेकर उन्हें उनके अधिकारियों से वंचित कर दिया था। वे मर चुके हैं। लेकिन तुम और मैं अब भी जिन्दा हैं। और मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं तुम्हारी हत्या करूँगा।'

कर्नल का हास्य गुँज उठा। समारू समझा नहीं। वह जैसे घबराया सा था।

कर्नल ने कहा, 'और उस बदले की शुरुआत आज रात को इस तरह हुई कि तुमने ही मेरी जान बचाई है! वाह! मैं भी सैनिक हूँ और देशों में मैंने युद्ध किया है। तुम मेरे दुश्मन हो तो भी मैं तुम्हारी इज्जत करना जानता हूँ। दुश्मन और दोस्त के बत्तीब में जो फर्क है वह मैंने हिन्दुस्तान में ही नहीं; विलायत में भी सीखा है। आज जब तक तुम मेरे साथ खाना नहीं खाओगे तब तक मुझे खुशी नहीं होगी। आओ। आज मेरी लड़की का जनम दिन मनाया जा रहा है। यह उत्सव इसी-लिये रचा गया है। मैदान से इज्जतदार मेहमान आये हैं। मैं तुम्हें अपना सबसे बड़ा मेहमान समझकर आज दावत देता हूँ। मुझे उम्मीद है एक बहादुर आदमी की तरह तुम मेरी बात स्वीकार करोगे!'

समारू की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। उसके गले से एक आवाज़ निकली, जैसे कोई भेड़िया गुर्गया हो। कर्नल सावंत ने मुना, उस समय वह कह रहा था, 'मैं कह चुका हूँ, कर्नल! तुम और मैं जो संबंध रखते हैं, वह कैसा है, इसे मैं बता चुका हूँ। उसके बाद भी तुम समझते हो कि मैं तुम्हारी देहली पर पाँव दूँगा? नामुमकिन!'

कर्नल सावंत इसका उत्तर देता, इससे पहले ही सामने की वह खिड़की खुली, जिसके शीशे अभी तक चमक रहे थे। और खिड़की से प्रकाश नीचे गिरा, जिसमें कर्नल और समारू दोनों ही स्पष्ट दिखाई देने लगे। समारू के शब्द कण्ठ में ही अटक रहे गये और उसने देखा कि एक अत्यंत सुन्दर युवती, भव्य वेशभूषा से सज्जित, आभूषणों से अलंकृत, अँगरेज़ी तरह के बाल कटायें खिड़की में खड़ी थी। उसका रंग इतना गोरा था जैसा समारू ने लाल कमल पर पड़ी बर्फ की सतह में देखा था।

उसकी आँखें ऐसी थीं, जैसी समारू ने हिरनी के चेहरे पर देखी थीं। उसके हाँठों पर ऐसी मुस्कराहट थी जैसी समारू ने वसंत के मौसम में फूलों में देखी थी। वह सब देखकर इतना अच्छा नहीं लगा, जितना यह सब देखकर। उसके गले में बड़े-बड़े मोतियों का हार था, ऐसा कि वह सचमुच अद्भुत लगता था और बीच का मोती तो बतख के अंडे से भी बड़ा था। समारू ने देखा उसकी पतली कमर उसके वस्त्र और कूल्हों के बीच में इतनी आकर्षक थी कि जिसका वयान नहीं। उसके सीने पर बड़े-बड़े मैदान के खुशबूदार गुलाब थे और ऊपर से नीचे तक चमड़े के कपड़े पहनने वाला समारू जिसे नहाये कई दिन हो गये थे, इस समय उस बर्फ की सुन्दर रमणी को एकटक देखता का देखता ही रह गया। समारू ने ऐसा रूप मला कब देखा था ! उसने पहाड़ों में देखी थीं, जिनके कपड़ों से जुएँ निकलती थीं, जिनके पीछे बच्चे बँधे रहते थे। उसने काँहों को ऐसा रूप, ऐसा यौवन कभी देखा था। उसने कल ही अकेले में काम न होने पर अपने जिस्म में इलायची का तेल मला था, जो उसने एक व्यापारी से खरीदा था और उसे दो सुन्दर रीछ मारकर बदले में दिये थे। अब उसे खुद ही यह सब काम करना पड़ता था, क्योंकि उस्ताद के बिना उसका काम करने वाला कोई भी नहीं था। अब वह कभी-कभी खाना बनाता था, ज़्यादातर वह शिकार मार लाता, उसे भून कर नमक डाल कर खाया करता था। उसका जायका उसे बहुत अच्छा लगता था। अपने कुत्तों को वह भुना गोश्त नहीं खिलाता था, कच्चा गोश्त खिलाता था ताकि उनकी आदतें न बिगड़ जायें।

कर्नल सावंत की विलायत में पली बेटी ने देखा तो जरा भी नहीं घबराई। यह तो वह समझ गई कि सामने का पहाड़ी कोई है, यहाँ का ऊँचा खान्दानी आदमी ही, क्योंकि वह ऊपर से नीचे तक चमड़े के कपड़े पहने है और जिस रौब से वह खड़ा है, जिस दबदबे से उसके कंधे पर बंदूक रखी है वह कोई साधारण पहाड़ी वाली बात नहीं है ! उसका

नाम था कला । उसने पिता से कहा, 'ओह ! आप किसी तरह लौटे तो । बाकी सब लोग कब से इन्तजार कर रहे हैं !!'

उसकी बात सुन कर्नल ने हाथ बढ़ाया और प्यार से उसका हाथ दबाया ।

'मेरी बेटी । मेरी जिन्दगी इस बहादुर आदमी ने बचाई है,' कर्नल ने कहा, 'इनसे कहो कि यह हमारे मेहमान बनें । आप पहाड़ पर लौट जाना चाहते हैं । वहाँ जहाँ कि घना कोहरा है, जिसमें से आपने आज मुझे मरते से बचाया है । कला बेटी ! मैं उसमें ऐसा गो गया था कि मुझे लगा कि बस यहीं, यहाँ सब कुछ खत्म हो जायगा । 'आइये !' उसने मुड़कर समारू से कहा, 'मेरी न सही, मेरी बेटी की बात तो आपको माननी ही होगी ।'

कर्नल अब 'आप' पर 'चढ़' आया था । अगर वह 'तू' कहता तो समारू समझता कि वह 'तुम' से नीचे 'उतर' आया है ।

'यह मेरी बेटी कला !' कर्नल ने कहा, 'इसकी पढ़ाई-लिखाई के अन्धे दिन विलायत में बीते हैं । और आप...'

'सर्दार समारू,' समारू ने कठोर स्वर से कहा ।

'समारू,' कला ने धीरे से कहा । वह सुन चुकी थी कि समारू नामक एक आदमी दूर ऊँची चोटी के पास अकेला रहता है । उसके बारे में इतनी किवदंतियाँ थीं कि कला को उसे रूबरू देख कर एक बड़ी दिलचस्पी-सी हुई । उसने बड़ी बेतकल्लुफी से कहा, 'आइये सर्दार,' आपने आज मेरे पिता की जान बचाई है । अगर आप न होते तो यह उत्सव आज उदासी में बदल जाता और मैं इस दुनिया में अनाथ हो जाती क्योंकि मेरा और कोई नहीं है । अगर आप नहीं आयेंगे तो हमारे आनन्द में सचमुच कसर रह जायगी ।'

समारू ने अंतिम वाक्य नहीं सुना । वह सिर्फ सोच रहा था कि मेरा और कोई नहीं है । और यह सोचते हुए उसने एक बार कर्नल की तरफ देखा और एक बार उसके बादंजो लड़की पर नजर गड़ाई तो

गड़ाए ही रहा । निहायत साहबी तबियत से कला ने अपना हाथ बढ़ाया जिसे समारू ने पकड़ लिया और इस झटके से उसने उसे पकड़ कर छोड़ दिया कि कला के नेत्र आश्चर्य से फटते नजर आये । उसने हाथ अपने कपड़ों में छिपा लिया । उसने सोचा समारू या तो पागल था, या क्रूर । वह लंबा आदमी उसे अब भी एकटक घूरता था । देख रहा था । और उस सुशिक्षिता उच्च कुलीन नारी ने पुरानी परम्परा का एक कुलीन बीर देखा जिसके चारों तरफ एक रूमानी जाल था, तो उसे लामुहाला एक अजीब सी चीज महसूस हुई ।

समारू ने इंकार नहीं किया । वह चुपचाप उसके इशारे पर उसके बाप के पीछे भीतर चला गया । कमरे में तेज लैंप जल रहे थे और छत के विशाल भाड़-फानूसों के भीतर मोमबत्तियाँ जल रही थीं । उनके रंग-बिरंगे प्रकाश में अनेक सुन्दर स्त्रियाँ बैठी थीं । एक ओर फूल गंध से कमरे को भर रहे थे और दूसरी ओर पुरुष बैठे थे । कानपुर का सिविल सर्जन इलाहाबाद के बैरिस्टर से बातों में मशगूल था और बनारस का जज अपनी एक ओखल पर चश्मा लगाए धीरे-धीरे सिर हिलाकर सुन रहा था । समारू घुसा तो कर्नल ने कहा, 'सर्दार समारू से मिलिये । आपने आज मेरी जान बचाई है ।' और कर्नल के यह कहने पर सब में एक खुशी की लहर दौड़ गई । सबने खड़े होकर स्वागत किया । समारू ने धीरे से गर्दन झुकाई जैसे वह कोई राजा था, जिसे सलामी लेने की आदत थी । उसके जिश्म पर वह घने फरदार चमड़े के वस्त्र देख कर और उस की इस शान को देखकर खुद कला को ताज्जुब हुआ । इसके बाद कर्नल ने वहाँ बैठे हुए मर्दों से उसकी मुलाकात कराई । बैरिस्टर राजदौ, सिविल सर्जन भटनागर, जज मलहोत्रा, इंजीनियर दत्त और सुपरिन्टेन्डेंट यूनुस-नक्वी, सब ही ने हाथ मिलाया और उसके बाद वे अपना हाथ मलने लगे, क्योंकि समारू ने हाथ क्या मिलाया था, अपने पत्थर के पंजे में उनके हाथों को कुचल दिया था । कला उस पंजे के स्पर्श से परिचित थी । पुरुष का स्पर्श था वह ! चाहे उसमें यह तमीज न हो कि उसे स्त्री से

हाथ कैसे मिलाना चाहिये, फिर भी वह अक्षय शक्ति का बर्बर स्रोत था । बाकी के लोग मर्द थे और दर्द से उफ़ करने में उनकी हेटी थी । अतः वे चुप रहे मगर उनके चेहरे पर एक विकृत छाया डोल गई, जैसे उन्होंने एक दृष्टि में ही नियत कर लिया कि आने वाला आदमी नहीं, कोई जानवर था ।

समारू उस वैभव को देखता था और उसके मन की आग और भी अधिक भड़कती थी । यह सब उसका अपना था । अपना था ।

वह दीर्घ भवन उसकी आँखों में नाचने लगा । उसका मोटा कालीन जिस पर वह खड़ा हुआ था ! वह सुन्दर चमकती मेज़, कुर्सियाँ ! और वे कॉच के सामान । एक गज़ ऊँचा वह सुनहले शीशे का गुलदस्ता । दीवारों पर ऊनी कंबल ढँगे थे ! नहीं । वे मखमल के सुख पदों थे । कॉच की बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ, जिनमें से दूर निचली घाटी की बस्तियाँ दिखाई दे रही थीं, क्योंकि फिर उनके नीचे बादल नहीं भूलते थे । वहाँ वह सीलन नहीं थी, जो समारू के घर पर सदैव बनी रहती है । बाहर से भवन मोटे और अनगढ़ पत्थरों का लगता था, लेकिन भीतर वह कितनी चिकनी दीवारों वाला था । छतें मुकावदार थीं, जिनका बीच का हिरसा उठा हुआ था । विशाल दरवाजे के सामने ही दरी बिछी थी । और समारू ने देखा कि उस कमरे की लम्बाई में दस आदमी एक के बाद एक लेट सकते थे और चौड़ाई में पाँच आदमी । कितना लंबा चौड़ा था वह सब !

और उसे खयाल आया, यह सब मेरे पूर्वजों का बनाया हुआ है । इस पर मेरा अधिकार होना चाहिये था । लेकिन आज मैं यहाँ एक परदेसी बनकर खड़ा हूँ । एक और सुन्दर मूर्ति रखी थी । समारू ने देखा वह एक औरत थी जो कि एक हिरन को घास खिला रही थी । उसने उस सब को भूल जाना चाहता । वह स्वयं वहाँ रहता था जहाँ आकाश में मँडराने वाला गिद्ध रहता था, जहाँ कभी भी इंसान नहीं जाता था, जहाँ उसकी खाट के नीचे मोटी दुम वाली लोमड़ियाँ सोया करती थीं । इसी

प्रादमी से बदला लेने के लिये उस्ताद ने इतने दिन उसकी छाती में आग धरी थी। और समारू को याद आया। जब वह छोड़ा था। बाप गरीबी में मर गया था। माँ का टूटा दिल उसे कितना रुलाया करता था। तब ग्रन्थानक उसे उस्ताद ने कहीं से बहुत-सा धन लाकर दिया था। सोचा! छिने पर भी उसने कभी नहीं बताया था कि वह कहाँ से आया था। कभी उसे खर्च नहीं करने दिया। जब वह कहता तब यही उत्तर मिलता; जिस दिन तू सर्दार बनने वाला होगा, उसी दिन यह तेरा हाँ जायगा।' और वही पत्थर तोड़ ज़िन्दगी चलती रही। सोना अब भी उसके पलंग के नीचे पत्थरों के नीचे रखा है।

और आज उस भीम शक्ति को लेकर भी वह यहाँ खड़ा था। क्या? क्योंकि उसे एक स्त्री ने बुलाया था।

कला के मुख पर विजय की मुस्कान थी। वह चलती थी तो सब अन्तरज से उसकी ओर तारीफ भरी निगाहों से देखते थे। वह बनती ऐसे थी जैसे वह जानती थी कि सब लोग उसकी ओर आकर्षित थे। लेकिन वह हर चीज़ देखती थी। जब वह किसी की तबियत उन्चटते देखती तो उधर मुस्करा देती और मेहमान दिल फिर से लगने लगता।

कर्नल ने इशारा किया। तब कला ने आगे बढ़कर समारू से कहा, 'सरदार साहब! आइये! दावत शुरू करें!'

वह घूरता रहा। ऐसे कि स्त्रियों ने उसे देखा और मुड़कर कला की ओर। परन्तु कला सब देखभाल कर भी अनबूझ बन गई थी। वह आगे बढ़ गई थी। सब लोग खाने की कुर्सियों पर बैठ गये। खाना ला-लाकर नौकर परोसने लगे। कला ने समारू की तश्तरी में जब ताज़ा पका मसालेदार मुर्ग रखा तो उसने चाकू से काटा नहीं। मेहमान मुस्कराये। मगर किसी ने कुछ कहा नहीं। सबने टुकड़े काट-काट कर लिये और जब खाना शुरू हुआ तो समारू ने बिना संकोच के हाथों से उठा-उठा कर ही सारा मुर्ग खा लिया और ऐसे बैठा रहा, जैसे अभी कुछ हुआ ही नहीं। कर्नल ने कहा, 'मेहमान को मुर्ग बहुत पसंद आया?'

‘हूँ !’ समारू ने कहा ।

कला मुस्करा दी । समारू उसी की ओर देखता रहा । कर्नल जज से बातें करने में मशगूल था ।

जब खाना खत्म हुआ तब सब फिर उसी कमरे में आ गये । कर्नल ने कला से धीरे से कहा, ‘यह मेरी हत्या करने की बात कर रहा था ।’

‘क्यों ?’ वह चौंकी ।

‘ब्रिजजी ने इसी के बाप से इस मकान को ले लिया था । यही इस घर के पुराने मालिक का बेटा है ।’

कला का संदेह ठीक निकला । वह सदा ही निकला ।

उसने कहा, ‘लेकिन वह तो पुरानी बात है ।’

‘ठीक है बेटी ! यह कोई पढ़ा-लिखा तो है नहीं ।’

‘तो फिर ।’

‘फिर क्या ? इससे होशियार रहने की ज़रूरत है ।’

कला ने सिर हिलाया । कह, ‘मैं इसे ठीक करूँगी ।’

वह बढ़ी और फिर जब वह बातें करने लगी तो समारू एकाग्र चित्त मुनता हुआ लगा । वह उसे अपना चित्र-भण्डार दिखाने लगी । उसने पेरिस में खरीदे सुन्दर चित्र दिखाये ।

समारू ने मुना और हठात् कहा, ‘यह फूल मुझे दे दो ।’

फूल !

उसके फूलों का हार !

वह देखती ही रह गई । फिर उसने फूल निकाला और उसके सामने पेश किया । लेकिन उस क्षण उसने फूल ही नहीं लिया, बल्कि उसका हाथ पकड़ कर दबा दिया ।

कला के मुँह से चीख निकल गई । और उसी समय उसने हाथ पकड़ कर चूम लिया ।

कला का मुँह क्रोध से लाल हो उठा । उसने भटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और कहा, ‘तुम पागल हो !’

समारू घूर रहा था। उसको आँखों में अखंड वासना भलक रही थी। उसने जैसे सुना ही नहीं।

‘जंगली!’ कला ने फुंकार कर कहा।

‘मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।’

समारू ने भरपूर स्वर से कहा, ‘मैंने कभी किसी स्त्री से प्यार नहीं किया!’

कला के चेहरे पर घृणा का भाव दिखाई दिया।

समारू ने कहा, ‘तुम मुझे घृणा करती हो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। जिस वक्त तुमने पहली निगाह डाली थी, उस वक्त तुमने मुझे ऐसे देखा था, जैसे मैं कोई जानवर था। और वही चीज़ अब भी है। तुम बड़े बाप की बेटी हो, यही तुम्हें घमंड है। मेरे पास भी सोना है।’

‘जंगली,’ कला ने कहा, ‘संता! मैं तुमसे नफ़रत करती हूँ। मैं तुमसे नफ़रत करती हूँ। तुम मेरे पिता की हत्या करना चाहते हो? तुम भयानक हो। क्रूर हो!’

‘नहीं। मैं वादा करता हूँ कि मैं अपनी कुल परम्परा को भूल जाऊँगा लेकिन ऐसा नहीं करूँगा।’ समारू का स्वर भारी हो गया। लेकिन उसकी ओर कला ने फिर भी नहीं देखा। उसकी वह घृणा देख कर समारू दहल उठा। वह वज्रपुरुष उस कोमलांगी स्त्री के सामने दयनीय बनकर खड़ा था!! और वह स्वामिनी बनकर खड़ी थी! समारू जिससे जंगली जानवर डर कर दुम दबाते थे, वह वहाँ कितना दीन होकर खड़ा था! ‘मैं क्या करूँ! शकल का तो मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं तुम्हें तकलीफ नहीं दूँगा,’ समारू ने कहा। क्षण भर वह ठिठका खड़ा रहा और फिर एक बार बिजली सी कौंधी। समारू ने उछल कर खिड़की पकड़ी और अपने मजबूत हाथ पर बल देकर वह उस पार के पहाड़ पर कूद गया, जो पीछे की ओर था।

कला ने भाँक कर देखा। वह भीमकाय व्यक्ति बढ़ता चला जा

रहा था। अंधकार में वह छिप गया। कला के रोम-रोम में भय सा व्याप्त हो गया। उसने देखा। अँधेरा कितना घना हो गया।

क्या उसने ठीक किया था !

उसने उसे कुरूप कहा था !

कुरूप !!

ऐसा अहंकार उसने क्यों किया ?

क्योंकि वह सुन्दर थी !

क्योंकि वह सदा बनी रहने वाली वस्तु थी !

क्या उसे कहना चाहिये था ?

नहीं।

लेकिन तीर हाथ में निकल चुका था। वह लौट गई और फिर आगंतुक अतिथियों में उसका ध्यान बँट गया।

समारू जब घर में निकला तो सीधा घर नहीं गया। बियावान पहाड़ों में चक्कर लगाता रहा। रात भर चलता रहा। आज उसके पाँवों को विश्राम नहीं था। जब वह चलता तो पत्थर ठोकर खाकर गिर जाते तो घरों में सोये लोग जाग उठते। जो कोई अगर देख लेता तो रास्ता भेड़ देता। आँर था ही कौन ! एक बुढ़िया ने देखा तो भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये। कहाँ जा रहा था वह ! घर जा कर क्या करेगा ? वह बचन दे आया है कि अब बदला नहीं लेगा। उसे लगा कि सामने उस्ताद खड़ा है। उसने आँखें मिचमिचाई। फिर देखा। अँधेरे में साफ वही तो था। कितनी भयानकता से हँस रहा था ! कितनी भयानकता से हँस रहा था। आतंक ने उस भीमकाय समारू के रोंगटे खड़े होने लगे। वह पसीने-पसीने हो गया। उसने अपना लुरा कमर से निकाल कर ताक कर मारा लेकिन वह उस्ताद के बदन को पार कर के उस ओर खड़े एक पेड़ के तने में गड़ गया। उस्ताद अब भी खड़ा था। वही पतली आँखें, वही गालों की उठी हुई हड्डियाँ, वही बीस बालों वाली दाढ़ी। वही नुकीली नजर। वही ! उस्ताद ही तो है। वह घुटनों के बल बैठ गया और

कहा, 'उस्ताद ! मैं तुम्हारे उपदेश को भूल गया । मैं क्या करूँ ! तुमने मुझे संसार से अलग क्यों रखा ! तुमने मुझे जानवर बना दिया । लेकिन आज मेरा दिल इतना नर्म क्यों हो गया ? मैं खुद नहीं जानता । उस्ताद मैं क्या करूँ ?'

सामने की शक्ल पास आई और बोली, 'तू समारू ! किंजुल का बेटा । बांगा का नाती है । तेरी रंगों में हूण राजकुमारी का लहू वह रहा है । तू उस घर में गया जहाँ तेरा दुश्मन रहता है ? तू औरत के सामने झुक गया ! उस, उस स्त्री को अपना बना । उसे अपनी दासी बना । वह तेरे बच्चों की माँ बने । तभी तेरी जीत है ।'

और सामने की शक्ल फिर अंधकार में एकमेक हो गई । समारू ने सिर धरती पर टिकाया ।

आकाश में पौ फटने लगी थी । वह बढ़ चला । उतरने लगा । दूर उसे एक सराय दिखाई दी । वह खुश हुआ और उसके द्वार पर पहुँचा । अभी भोर पूरी तरह नहीं हुई थी । वह भीतर घुसा । एक बुड्ढा चाय बना रहा था । पास ही पुआल पड़ी थी और दो औरतें भीतर के कोठे में बातें कर रहीं थी । समारू को देखकर बूढ़े ने मुस्करा कर कहा, 'फहो मुसाफिर हो ?'

'हाँ ।'

'रात भर सफर किया है ?'

'हाँ ।'

'आराम चाहते हो ?'

'हाँ ।'

बुड्ढा बातूनी आदमी था । वह उसे कोठे में ले गया जहाँ उसे देख कर औरतें चौंक उठीं ।

'कोई नहीं,' बुड्ढे ने कहा, 'एक मुसाफिर है ।'

औरतों की उत्सुकता कम हो गई । एक बार उसकी लम्बाई की ओर जरूर देखा । आदमी था कि दैत्य !

समारू पुआल पर लेट गया । उसने देखा बाहर खचर खड़े थे और मुसाफिर सो रहे थे । दोनों औरतें उसे देखकर चुप हो रहीं । समारू लेट गया और उसने ओखें मींच ली तो उसे कुछ देर में सोया जानकर वे फिर बातें करने लगीं । एक उनमें अघेड़ थी । दूसरी करीब बीस, बाइस की थी ।

एक ने कहा, 'अच्छा चाची !'

'अरी रहने दे,' अघेड़ ने कहा ।

'वह तो सो गया चाची !'

'थका हुआ तो था ।'

'वही तो कहती हूँ । तुम अपनी बात कहो ।'

'अब वह तेरे लायक बात नहीं है ।'

'क्यों ?'

'तू डरेगी जो ।'

'अरे हाँ डरूँगी ! मैं कोई अब छोटी हूँ ?'

'तो कोई बात भी तों नहीं है । चाची ने कहा,' 'वह है न ?'

'हाँ, हाँ । चाची ! मुझे तो यही ताज्जुब है । कैसे मान गई वह ।

वह तो उससे बहुत नफरत करती थी ।'

'करती रहे नफरत । वह टाट की शादी हुई कि जिसका बयान नहीं । भला बात ही ऐसी थी ।'

'वही तो तुम नहीं बतातीं ।'

'अब यहाँ कोई सुन लेगा,' चाची ने दबी ज़बान से कहा ।

'कौन सुनता है । सूरज निकला नहीं । सब तो सोये पड़े हैं । और यह तो सो गया है ।'

चाची ने धीरे से ही कहा, 'अरी वह बसीकरन का तावीज ले आया था ।'

'हाँ ?'

‘सच !’

‘किससे ?’

‘नीले पहाड़ की चौथी चोटी के नीचे जो बिंदा डाकिन रहती है न ? उसी से ।’

‘वही चाची जिसके बारे में लोग कहते हैं कि उसकी एक जवान लड़की है जो बड़ी बदचलन है ।’

‘बदचलन नहीं है वह ! तांत्रिकों की शक्ति है ।’

‘वह क्या चाची ।’

‘छिः छिः,’ चाची ने कहा, ‘उसे छोड़ ।’

‘अच्छा जाने दो चाची । वह बसीकरन वाली बात तो बताओ !’

‘बेटी अधजला मुर्दा यह डाकिन मरघट में से ले आती है और फिर उसकी बची-खुची खाल उतारती है और फिर उसे भूत से सेती है । तब वह ताबीज़ बनता है । बिंदा बुढ़िया को उसका कमाल हासिल है । जिसको वह ताबीज़ बना कर दे देती है, उसका बसीकरन न चले, ऐसा तो कभी होता ही नहीं ।’

बातें बन्द होने लगीं क्योंकि समारू उठ रहा था । बुढ़ा चाय बना लाया । उसके हाथ में खाने की भी एक तश्तरी थी । समारू ने बैठ कर चैन से पूरी तश्तरी साफ़ कर दी, और चार प्याले चाय भी पिये । फिर बुढ़े को पैसे देकर अपने कपड़ों से पुआल झाड़ता वह बाहर आ गया ।

आकाश में सूरज निकल आया था । भरनों पर उसका प्रकाश चिल-चिलाने लगा था और कुहरा ऊपर की ओर उड़ा जा रहा था । सारे वातावरण में एक शीतलता व्याप्त थी । वह घर लौट आया । किन्तु घर आते ही उस पर भयानक उदासी छा देने लगी । उसका अनगढ़ पथरो का घर उसे चिढ़ाने लगा । उसने अपने कपड़े उतारे और दूसरे पहन कर लेट गया । दुपहर तक वह सोता रहा । जब वह जागा तब उसमें एक नयी भावना थी । अचानक उसकी नजर शीशे पर गई । वह देखता रहा, देखता रहा । उसे लगा शीशे में वह उसका ही अक्स नहीं था । वहाँ तो कोई

और ही था । बदशकल ! भयानक जिसके दाँत बाहर निकले हुए थे, जिसकी आँखें गड्ढों के धँसी हुई थीं, जिसके बहुत बड़े-बड़े कान थे । राक्षस ! राक्षस !

वह उसे नहीं देख सका । उसकी टकटकी बँधी रह गई । निगाह हटने का नाम नहीं लेती थी । समारू पसीने-पसीने हो गया । और कब तक वह देखता रहा, उसे नहीं मालूम । शाम हो गई । वहाँ अँधेरा हो गया, लेकिन शीशे में जो राक्षस था वह उसे अब साफ दिखाई दे रहा था, वीमत्स, भयानक ! उसने उसकी दृष्टि को पकड़ कैसे लिया था ? आखिर वह क्या देख रहा था ?

‘तू कौन है ?’ उसने कहा ।

अचानक वह बिंब हिला और समारू को देख कर उसके अपने चौड़े और बदसूरत होठों पर लाल-लाल जीभ फिर गई, कि समारू मूर्च्छित हो कर गिर गया । कब तक वह वैसा ही पड़ा रहा, उसे नहीं मालूम । अल-स्सुबह छोटी चिड़िया खिड़की पर बोली और समारू का कुत्ता गुरगुराया, तब उसकी आँख खुली । उठते ही उसकी दृष्टि फिर शीशे पर गई । क्षण भर वह देखता रहा और वही राक्षस फिर वहाँ आ गया । लेकिन अबकी बार उसके सिर पर दो सींग और थे ! वे बिजली की तरह चमक रहे थे । देखते-ही-देखते उस राक्षस की आँखें पीली-पीली-सी नजर आने लगीं ।

समारू ने पास पड़ा हथौड़ा जोर से शीशे पर मारा और शीशा भून-भूना कर टूट कर गिर गया । उसके टुकड़े-टुकड़े छितर गये । समारू हर्ष से उठ खड़ा हुआ । किंतु वह हर्ष बेकार का था, क्योंकि जितने टुकड़े थे अब उनके बीच में खड़े होकर उसने देखा कि वह राक्षस छोटा-छोटा सा बन कर अब हर एक टुकड़े में दिखाई दे रहा था और कुछ ही देर पुराना रूप तो एक टुकड़े में रहा, किसी में से बिल्ली, किसी में से लोमड़ी, किसी में से चूहा भाँकने लगा । कितना डरावना था वह सब कि उसने सबको भारी बूट के नीचे कुचल-कुचल कर पीस दिया । इतना कि फिर

कोई टुकड़ा प्रतिबिम्ब ग्रहण करने के योग्य ही नहीं रहा। तब जाकर उसे चैन आया। शीशे की जगह खाली हो गई थी।

उसने सोना निकाला। जेब में भरा और घर से चल पड़ा। चरवाहों से रास्ता पूछता वह नीले पहाड़ की चौथी चोटी की छाया में पहुँचा तो वहाँ एक बहुत पुराना घर दिखाई दिया। उसने दरवाजा खटखटाया।

कोई उत्तर नहीं आया। फिर द्वार खटखटाया।

अन्दर से किसी ने सॉकल खोली और एक जवान औरत निकली जिसके माथे पर सिंदूर लगा हुआ था। उसके मुँह से शराब की बदबू आ रही थी और आँखें लाल थीं। उसकी आँखों में एक अजीब आकर्षण था जो आज तक समारू ने नहीं देखा था।

‘कौन हो’, औरत ने कहा। उसने अपने सीने पर हाथ फेरा और समारू को लगा उसके होंठ सूख गये थे।

औरत ने फिर कहा, ‘क्या चाहते हो?’

समारू चौंका।

कहा, ‘मैं बिन्दा से मिलना चाहता हूँ।’

‘वह नहीं है।’

‘कब मिलेगी?’

‘आधी रात के वक्त।’

समारू चक्कर में पड़ गया। जी चाहा कि लौट जाये। मगर कहाँ! वह स्थान जहाँ वह रहता है यहाँ से दस मील दूर है। लौटकर जाये तो रात को ही लौटकर कैसे आ सकेगा।

उसने बताया। समझाया। पूछा कि कोई सराय पास है या नहीं। उत्तर मिला नहीं। तब?

स्त्री ने उसकी ओर देखा और हाथ पकड़कर कहा, ‘भीतर आ जा। तू मेरे पास बैठ। रात को मैं जाऊँगी। तब तू यहीं रहना। आधीरात बाद मैं आयेगी। मैं उसकी बेटी हूँ।’

समारू का मन किया वह हाथ छोड़ा ले। मगर उसने कभी स्त्री का

स्पर्श नहीं पाया था। वह बदशकल था न ? और यह जवान औरत जो देखने में भी अच्छी थी, उससे नफरत नहीं कर रही थी ! समारू उसके साथ भीतर चला गया। औरत ने साँकल बन्द कर ली और फिर भीतर के कमरे में ले गई जहाँ वह बैठ गई और वहाँ समारू ने देखा कि वह आराम से शराब को गिलास में उँड़ेलने लगी। समारू के माथे में बल पड़ गये। पर वह चुप रहा।

‘रात को मैं जाऊँगी,’ औरत ने कहा।

‘कहाँ ?’

‘तू जानना चाहता है ?’

‘हाँ।’

‘क्यों ?’

‘यों ही।’

‘तो सुन। मैं मरघट जाऊँगी।’

‘मरघट !!’

‘चौकता क्यों है ?’

‘तुझे डर नहीं लगता।’

‘डर ? डाकिनी की बेटी को क्या डर ?’

‘वहाँ वे आते हैं ?’

‘कौन ?’

‘प्रेत ?’

‘प्रेत !’ औरत ठठाका हँसी और कहा, ‘प्रेत क्या तुझ से भी डराना होता है। ले देख !’ उसने शीशा उठा कर सामने कर दिया।

समारू ने देखा तो वही राक्षस शीशे में हँस रहा था। उसने जोर से झपट कर शीशा छीन लिया और दूर खिड़की के बाहर फेंक दिया। औरत गुस्से से उससे उलझ गई और उसका मुँह नोचने लगी। वह चिल्ला रही थी, ‘कायर ! तू जानता है मैं कौन हूँ। मैं शक्ति हूँ। मैं

शक्ति हूँ। मैं तांत्रिकों की शक्ति हूँ। मैं हूँ तभी वे लोग शव पर मेरे साथ लता साधना करते हैं।’

बड़ी मुश्किल से समारू ने उस औरत के हाथों को पकड़ा और उसे दबा कर बैठ गया। स्त्री ने कहा, ‘छोड़ दे मुझे।’

‘अब तो नहीं लड़ेगी।’

‘नहीं। तू सचमुच पुरुष है,’ स्त्री ने कहा और उससे सटकर बैठ गई। वह देर तक उसके मुख को देखती रही। फिर उसका कठोर हाथ अपने हाथों में लेकर दबाने लगी और कहने लगी, ‘लता साधना जानता है क्या होती है?’

‘नहीं,’ समारू ने कहा।

स्त्री ने कहा, ‘कभी शराब पी है?’

‘नहीं।’

‘पियेगा?’

‘नहीं।’

‘मरेगा?’

‘नहीं।’

‘नहीं, नहीं। तेरे बीबी है?’

‘नहीं।’

‘फिर तू करता क्या है?’

‘कुछ नहीं।’

‘पहले नहीं था, अब उसको बढ़ा कर कुछ नहीं कर दिया,’ स्त्री ने कहा। वह जैसे चिढ़ गई थी। और फिर उसका हाथ बढ़ा। वह समारू की सुदृढ़ भुजाओं की मांसपेशियों को दबाने लगी और जब उन्हें दबा नहीं सकी, तो एक विचित्र आनन्द से विह्वल हो उठी। बॉली, ‘मेरे साथ अमावस की रात को चलेगा?’

‘कहाँ?’

‘मरघट!’

‘क्यों ?’

‘साधना करूँगी ।’

‘औरत भी साधना करती हैं ?’

‘करती है पागल । जब तुझ जैसा पागल मिल जाता है । पर एक
घात है ।’

‘वह क्या ?’

‘जो मैं कहूँगी वही तुझे करना होगा ।’

‘तू क्या कहेगी ?’

‘स्त्री ने कहा, ‘तू शराब पिये तो बताऊँ ।’

‘नहीं, मैं नहीं पीता ।’

‘क्यों ?’

‘मैंने कभी नहीं पी ।’

‘तो क्या इसी से अब भी नहीं पियेगा ?’

‘हाँ ।’

‘तो जो काम तूने कभी नहीं किये वह अब भी नहीं कर रहा है ?’

समारू चिंता में पड़ गया । उसने कभी स्त्री से इतनी बात नहीं की थी । और आज उसे मालूम पड़ा कि वह इस जाति के सामने कुछ भी नहीं था । पहली स्त्री मिली थी जिसने उसके दिल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और वह दूसरी मिली है तो इससे भी जीत होना बड़ा कठिन है ।

उसने उत्तर नहीं दिया । स्त्री रूठ कर खड़ी हो गई । उसने अपने कपड़े बदले । समारू आँखें भुकाये बैठा रहा । परन्तु उस स्त्री को जैसे कोई लज्जा नहीं थी । और तब सहसा ही समारू का शरीर काँपने लगा । वह अपने हाथों से अपनी आँखों को ढँककर मुक गया । स्त्री हँसी । उसने कहा, ‘शक्ति !’

समारू और भी मुक गया ।

अंत में स्त्री ने शराब की बोतल उठाकर गले में उतार ली और

तभी द्वार पर किसी ने सॉकल खटखटाई । स्त्री ने कहा, 'जा दरवाज़ा खोल आ ।'

समारु कुत्ते की तरह गया और दरवाज़ा खोला तो एक कापालिक भीतर घुस आया । वह समारु को देखता रहा और उसने मोटी भारी आवाज़ में कहा, 'शक्ति है ?'

'है,' स्त्री ने कहा, 'आ जाओ भीतर ।'

वह आदमी अपना त्रिशूल धरती पर टेकता, गले की हड्डियों की माला को खड़खड़ाता, हाथ में कपाल उठाये भीतर घुस गया । उसने समारु की तरफ़ देखा ही नहीं जैसे वह कोई कीड़ा-मकोड़ा था ।

वह भीतर जाकर बैठ गया ।

स्त्री ने कहा, 'तुम हो !'

'हाँ भैरवी !' उसने कहा, 'याद है न ?'

'खूब याद है । मुझे भूल लगी है ।'

'तो लो मैं ले आया हूँ,' कहकर उसने तला हुआ मांस उसके सामने अपने हाथ के कपालरूपी कमंडल में से निकालकर रख दिया । और शराब की बोतल कमर के बाघम्बर में से निकाल कर धर दी । स्त्री खुश हो गई । खाने लगी और बीच-बीच में बोतल में से शराब पीने लगी ।

समारु एक कोने में बैठ गया । वह लाचार-सा देखता रहा । शक्ति ने कहा, 'धन लाये हो ?'

'हाँ, हाँ,' कहकर कापालिक ने सोने की एक अशर्फी उसके सामने धर दी ।

एक कापालिक के पास सोना कहाँ से आया यह सोचकर समारु को आश्चर्य हुआ । परंतु तब तक स्त्री ने कहा, 'काम बड़ा है । तू मुझे लता नहीं बनायेगा न ? अग्निकुण्ड बनायेगा ? मुझे दो सिक्के दे ।'

'जय भैरवी,' कहकर कापालिक ने एक और सोने की अशरफी उसके सामने धर दी ।

स्त्री प्रसन्न हो गई । कहा, 'तू नहीं पियेगा गुरु ?'

'अभी नहीं ।'

स्त्री ने फिर कुछ नहीं कहा । वह कुछ खा-पीकर लेट गई । कापालिक उसके माथे पर सिंदूर लगाता हुआ कुछ 'हुँ फट्, ऊँ मणिपद्येहुँ,' जैसे मंत्र बोलता रहा । और वह स्त्री उसके हाथ के स्पर्श से ढीली होकर लेट गई । इसके बाद कापालिक ने कहा, 'नौजवान !'

समारू आगे आया ।

कापालिक ने उसके हाथ पर कुछ भस्म रख दी और उठकर द्वार खोलकर चला गया । समारू द्वार बन्द करके फिर वहीं बैठ गया । स्त्री ने कहा, 'नौजवान !'

'क्या है ?'

'भूखा है ?'

वह कह नहीं सका ।

'तो ले !' स्त्री ने कापालिक वाला दोना उसके सामने सरका दिया । 'मना मत करना, समझा ! बड़ा ऊँचा साधू है यह ! इसको यज्ञ की सिद्धि है । जब चाहे जितना धन हाथ फैलाने भर से पा जाता है ।'

समारू लाचार था । उस पर डर था । वह गोश्त का टुकड़ा उठाकर चबाने लगा । पर उसे वह अजाब-सा लगा । उसकी मुद्रा देखकर वह स्त्री हँसी, 'और कहा क्यों अच्छा नहीं है ? अरे तू अब आज यह प्रसाद पा गया है । यह साधारण चीज़ नहीं है ! नये मुर्दों की जीभ काटकर पकाया हुआ गोश्त है ।'

समारू को उबाकी-सी आई और उसने कै कर दी ।

स्त्री बैठ गई । क्षण भर उसकी ओर देखती रही, फिर उसने धीरे से कहा, 'बाहर जाकर बैठ । इसे न छू । कापालिक इसे देख कर बड़ा खुश होगा । यह तो अमृत निकला है तेरे भीतर से, जो तू न पचा सका । पर वह सब पचा जायेगा । इसे यों ही पड़ा रहने दे ।'

समारू का मन धबराने लगा । उसने कहा, 'मुझे पानी दे । मैं मुँह साफ करूँगा ।'

'पंचामृत के बाद मुँह साफ करेगा अभागे ! और जरा आगे चलकर कामरूप के पहाड़ों में होता तो तुझे असली कापालिक मिलते । उनकी शक्ति भी असली शक्ति होती है । मेरी तरह घर पर नहीं रहती, उनके साथ ही सदा रहती है । जा, घड़े में पानी रखा है । मुँह धो ले । तेरे भाग्य में ही नहीं है ।'

समारू ने बड़े यत्न से मुँह धोया और तब वहीं एक कोने में बैठ रहा । भीतर स्त्री खुर्राटे लेने लगी थी ।

शाम हो गई । रात भी आ गई । बाहर तूफान सनसनाने लगा । दूर से उस भयानक रत में ऐसी आवाज आई जैसे कोई कुत्ता रो रहा था ।

उस आवाज़ को सुन कर स्त्री जाग गई । उसने कहा, 'आ गई ।'

कुछ ही देर बाद बिन्दा डाकिन आ गई । वह बुढ़िया थी, उसकी नाक भुकी हुई और लम्बी थी । माथे पर कई लकीरों सी सिकुड़न थी । उसके दाँत नहीं थे, जिसकी वजह से उसकी ठोड़ी उसकी नाक से लगती थी । वह देखने में ही डरावनी और कुटिल नज़र आती थी । उसके सिर के बाल बिल्कुल सफ़ेद थे और आँखें नीली-नीली सी थीं । वह जब देखती तो उसका नीचे का भुर्रियोंदार जबड़ा अपने आप हिलने लगता ।

समारू को देख कर उसने कर्कश स्वर से कहा, 'कौन है ये लड़का !' बेटी ने बताया ।

'बशीकरण !' बुढ़िया जोर से हँसी और समारू को लगा जैसे कुत्ता फिर रोने लगा था ।

बुढ़िया ने हाथ फैला कर कहा, 'कीमत दोगे ?'

समारू ने भीतर कपड़ों में से एक टुकड़ा सोने का निकाला और उसके हाथ पर दूर से डाल दिया ।

बुढ़िया उसे पाकर प्रसन्न हो उठी। बोली, 'सर्दार राजा होगा। कैसा दिल है पहाड़ का सा तेरा, कि उसमें से नदी बहनी चाहिये, नदी ! भरना नहीं।'।

फिर उसने अपना हड्डी का सा पंजा फैला दिया और उसकी ओर लालच से देखने लगी।

समारू ने दूसरा टुकड़ा उस पर डाला तो वह बहुत ही खुश हो गई।

'लेकिन !' समारू ने कड़े स्वर से कहा, 'अगर तेरा जादू नहीं चला तो याद रख, तेरी बोटी-बोटी काट कर खंदकों में फेंक दूँगा।'।

बुढ़िया ने कहा, 'अगर मेरा वशीकरण नहीं चलेगा तो बिन्दा इस पहाड़ को बीच से तड़का देगी और नदियों का जल पहाड़ के ऊपर चढ़ा देगी सर्दार। अगर कला तुझे प्यार न करने लगे, तो देख, मैं, हरे पेड़ों में आग लगा दूँगी और साँपों का ज़हर निचोड़ कर बादलों में भर दूँगी। लेकिन....'

'लेकिन क्या ?' समारू चिल्लाया।

'तू जानता है सर्दार आजकल मुझे...'

समारू ने दो टुकड़े सोने के फिर निकाले और बुढ़िया के सामने फेंक दिये। बुढ़िया ने कहा, 'अब मत डर। मैं जरूर तुझे वशीकरण दूँगी। परेशानी एक ही है। आजकल लोग मुर्दा पूरा जलने तक उठते नहीं....'

'चुप-चुप !' समारू ने कहा, 'यह सब मुझे बताने की ज़रूरत नहीं।'।

'पन्द्रह दिन बाद,' बुढ़िया ने कहा, 'भले ही ले जाना।'।

इसी वक्त कापालिक ने शंख बजाया। युवती चली गई। बाहर का तूफ़ान बढ़ गया था।

समारू चल पड़ा। तूफ़ान इतना तेज़ था कि समारू की आँखें भोंके के वेग में मुँद गईं। और नयी जगह होने के कारण वह रास्ता भूल

या । न जाने वह किस रास्ते में पहुँचा कि वह नहीं समझ सका । किन्तु वह चलता ही चला गया । अचानक ही देखा सामने एक ग़ाया थी ।

‘कौन था वह !’

‘उस्ताद !’

उसने कहा, ‘समारू !’

समारू ने साफ़-साफ़ सुना ।

उस्ताद ने फिर कहा, ‘तू वशीकरण लेने गया था ।’

‘हाँ,’ वह चिल्लाया, ‘वैसे वह खुद बहरा था ।’

‘कायर ! तुझे अपने पौरुख का तनिक भी विश्वास नहीं था ! तूने शूल की शान मिटा दी । तूने बाँगा का अपमान किया । तेरी रंगों में दूध राजकुमारी का लहू पानी हो गया है ।’

समारू ने भरपूर वेग से उस्ताद पर हमला किया । किन्तु वहाँ कोई था । समारू एक सोते हुए भेड़िये पर गिरा । भेड़िया भयानक स्वर में चिल्लाया और उसी समय चार और खूँखार भेड़िये आ गये, जिन्होंने समारू पर हमला कर दिया । समारू के क्रोध की सीमा नहीं रही । उसने एक की पिछली टाँगें पकड़ कर उठा लिया और उसे ज़ोर से पत्थर पर दे मारा । वह भेड़िया लटक गया । तब उस भारी भेड़िये को थियार की तरह घुमा कर उसने उन भेड़ियों पर हमला किया, जिनके तब उसके चमड़े के वस्त्रों को भी पार कर गये थे । भेड़िये भाग गये ।

समारू खड़ा हुआ । वह फिर चल पड़ा । अब भी वह रास्ता नहीं जानता था । अचानक उसके पाँव के नीचे का पत्थर लुढ़क गया और जब वह नीचे गिरा तो, सारे पहाड़ में धुँआधूँ की गूँज उठी और उस गवाज़ से कुछ पत्थर और लुढ़क गये । समारू भी लुढ़क चला । और फिर एक गहरे खंदक में गिरा, जिसमें उगे हुए पेड़ की एक डाली कड़कर वह भूल गया, मगर डाली कमज़ोर थी । पेड़ उखड़ आया और उस पेड़ के साथ वह नीचे बहती जल की तेज़ बर्फ़ सी ठंडी धारा

में गिर गया। समारू मूर्च्छित नहीं हुआ। वह पेड़ के सहारे बहने लगा। उसके चमड़े के कपड़े भीग गये और पानी भीतर चला गया। उस सर्द पानी के स्पर्श से समारू के एक बार को दौत बज गये।

पौ फटने लगी थी। वह बड़ी मुश्किल से रंग-रँग कर किनारे पर चढ़ा और पड़ रहा। जब उसकी आँख खुली उसने देखा दूर से चरवाहे उसे आश्चर्य से घूर रहे थे। उसने बदूँक को देखा कि वह किस हालत में है, लेकिन यह देखकर चरवाहे भाग गये।

यह निचली घाटी थी और सिर उठाकर समारू ने देखा। बिचली घाटी में दौंये कला का दीर्घ भवन दीख रहा था। और ऊँची चोटी के पास उसका अपना घर बादलों की खिड़कियों के बीच से भाँक रहा था। उसने निश्चय किया कि वह एकांत के रास्ते से ही घर लौटेगा और फिर वह बियाबान के रास्ते ही चलने लगा।

चलते-चलते वह ठिठक गया। पास ही मांस के लौंदे-सी कुछ चीज पड़ी थी जिसके चारों ओर गिद्ध योगियों की सी मुद्रा में बैठे थे। कभी-कभी कोई आगे बढ़ता था और उस मांस के लौंदे में चोंच घुसाकर भीतर से कुछ आँत या मांस खींच लेता था और चुपचाप खाने लगता था। वह कौन था। ऊपर निगाह उठा कर देखा तो बहुत ऊँची चट्टान थी। कोई गिर गया है। तभी उसकी नज़र त्रिशूल पर पड़ी जो दो टुकड़े हो गया था। तो क्या कार्पालक ! मर गया !!

उसने देखा नदी की धारा यहाँ पतली पर गहरी हो कर मुड़ गई थी और ढेर-ढेर फेन उठाती हुई बड़े वेग से नीचे गिर रही थी, जिस पर एक पेड़ की दो शाखाएँ ऐसी उलझ कर गूँथी हुई थीं कि पानी उन्हें धोता हुआ बह रहा था ! और उस जगह जहाँ कोई भी जाने में डरता, बिंदा की बेटी सो रही थी। वह अचरज से देखता रहा। तब उसकी समझ में आया। रात को जरूर वे तूफान में गिर गये हैं। शायद जिंदी हो। शायद मर गई हो। कौन जाने। लेकिन समारू सरदार था। उसका काम था 'अपनी' रियाया को बचाना। और वह डाली को पकड़ कर

उस धारा में उतर गया। पानी की धारा में वह तिरछा हो गया मगर उसने शीघ्र ही स्त्री को पकड़ लिया और एक हाथ से डाली पकड़े हुए, दूसरे से बिंदा को उठाये वह किनारे पर आ गया। उससे अपने सख्त हाथों से उसके मुँह को रगड़ा। हाथों, पाँवों को रगड़ा। पीठ और पेट को रगड़ा। गर्मी पहुँचने से वह चैतन्य हुई। आँखें फाड़-फाड़कर देखती रही।

‘तू जिंदी है,’ समारू ने कहा, ‘मरी नहीं है।’

परंतु वह कुछ बोली नहीं। दर्द से उसका जोड़-जोड़ दुख रहा था।

‘चल तुझे तेरे घर पहुँचा दूँ।’

‘नहीं, नहीं,’ वह चिल्लाई, ‘मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मुझे यहीं छोड़ दे।’

समारू ने पूछा, ‘फिर कहाँ जायेगी?’

स्त्री बड़ी उत्सुकता से देखती रही। फिर कहा, ‘कापालिक को मैंने ही गिराया था, लेकिन मैं भी अपने को उस धक्के में सँभाल नहीं सकी। उसने अग्निकुण्ड को अपवित्र कर दिया। अब मैं शक्ति नहीं रही, माया हो गई। अब मैं साधारण स्त्री हो गई। तू समझा?’

‘नहीं।’

‘तू चला जा।’

वह उठ कर बैठ गई।

फिर उसने कहा, ‘बिंदा की साधना मुझे रखने में बिगड़ जायगी।’ फिर उसने अजीब-सा प्रस्ताव किया, ‘तू मुझे अपने घर क्यों नहीं ले चलता।’

समारू ने देखा और कहा, ‘मैं तेरा क्या करूँगा।’

‘बीबी बना लेना।’

समारू व्यंग्य से हँसा। और चल पड़ा। स्त्री देखती रही। रोष से उसके नेत्र जलते रहे और जब तक वह दिखाई दिया उसकी पीठ को जलाते रहे।

जब समारू घर पहुँचा और दरवाज़ा खोल कर अंदर घुसा वहाँ ठंडक थी। उसने आग सुलगाई और कपड़े उतार कर गर्माने को बैठ गया। उसकी आँखों में नींद थी। कब जाने वह सो गया मगर जब वह जागा उसने देखा उसकी बगल में ही बिंदा की बेटी सो रही थी। उसने झुक-भोर कर उसे जगा दिया। स्त्री उठ बैठी।

‘तू कब आई।’

‘जब तू यहाँ सोया था।’

‘तू क्यों आई?’

‘ऐसे ही।’

समारू ने कहा, ‘निकल जा यहाँ से?’

‘निकल जाऊँ?’ बिंदा की बेटी ने कहा, ‘मुझे जान से मार सकता है?’

समारू देखता रहा।

बिंदा की बेटी ने कहा, ‘मुँगा वही करती है जो उसे अच्छा लगता है। मैं यहीं रहूँगी! समझा! तेरी रोटी बना दूँगी। तू मेरे लिये शिकार लाया कर। मैं माँ से इतना सोना माँग लाऊँगी कि तू दाँतों तले उँगली दबा लेगा।’

‘निकल जा यहाँ से।’ समारू ने उसका हाथ पकड़ लिया और घर से धक्का दे कर निकाल दिया! किंतु वह हँस कर बैठ गई। समारू भीतर आ गया और अब समारू को भूख लगी। उसने चावल पकाये और एक बकरा काट कर आग पर चढ़ा दिया। फिर मेवे निकाल कर रख लिये और जो अंडे उसे मिले वह दड़बे से बीन लाया।

जब वह खाने को बैठा दरवाजे पर मुँगा दिखाई न दी। कुत्ते उसकी तरफ देख कर गुर्राते लगे। समारू ने कुत्तों को बाहर निकालने की पुकार लगाई। वे आजादी से शिकार की तलाश में भाग गये। समारू खाता रहा, खाता रहा। जब वह खा चुका वह उठा और उसने हाथ धोया। फिर बैठ गया। मुँगा भूख से व्याकुल उसकी झूँठन को देखती

रही। समारू उठा और उसका हाथ पकड़ कर खींच लाया और उसे खाने पर बिठा दिया। मुंगा खाने लगी और समारू सो गया।

दुपहर ढले उसकी नींद खुली। वह घूमने गया और लौटा तो मुंगा नहीं थी। वह उसे भूल गया। दूसरे दिन उसकी इच्छा हुई कि तारा की मूर्ती का रास्ता तो देख लिया जाये। शायद वह अकेला वहाँ जा सके। गया भी, लेकिन लौटते में जब वह वहाँ का रास्ता दुर्लभ्य जान कर निराश हो लौट रहा था उसकी नजर सामने पड़ी और वही अटक गई क्योंकि उसने दूर से देखा कि कला घोड़े पर चढ़ी हुई थी। कर्नल भी साथ था और, और भी कई लोग थे जिनमें से गरीब कोई भी नहीं लगता था।

कब तक वह बैठा रहा, बैठा रहा उसे नहीं मालूम, पर दूसरे दिन ही वह घर पहुँचा तो देखा कई मजदूर उसके घर की मरम्मत कर रहे हैं और एक से एक सुंदर चीज वहाँ रखी है।

मजदूरों ने उसे देखा तो भय से काँप गये। समारू ने देखा मुंगा बैठी थी और मजदूर उस घर को सजा रहे थे। समारू जाकर तख्त पर बैठ गया कि मुंगा की आज्ञा से एक आरत उसके सामने सुंदर, स्वादिष्ट भोजन रख कर हाथ बाँध कर खड़ी हो गई।

समारू चुपचाप खाने लगा। मुंगा मुस्कराती रही। हठात् उसने मजदूरों से कहा, 'ठीक से काम करो। मैं सदाँर की नौकरानी हूँ तो क्या, यह न समझना कि तुम्हें लुटाने के लिये हूँ। ठीक से काम करो समझे ! मालिक का धन मैं यो ही नहीं बिगाड़ने दूँगी। मैंने जिसका नमक खाया हूँ, मैं उसकी ही बफादारी निभाऊँगी।'।

समारू ने कुछ नहीं कहा। भीतर गया। आँख के कोने से देखा। उसका धन सुरक्षित रखा था। तो क्या यह सब मुंगा लाई है ? और वह अपने को अब भी नौकरानी कहती है ? उसका मन कुछ अजीब-अजीब-सा होने लगा।

मुंगा सावधानी से उसकी हर एक गतिविधि को देख रही थी।

रात को वह उसके पाँव दबाने लगी और उसके बिस्तर पर ही ऐसे झुक गई जैसे वह सो गई थी। लेकिन समारू पर उसके स्पर्श का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। मुंगा को इसमें अपनी हार लगी। जिसको देखकर कापालिक चूक गया था उसका समारू पर कोई असर ही नहीं था। उसे अपने से घृणा हुई। क्रोध आया। फिर भय लगा। क्या यह आदमी है, या कोई शापग्रस्त देवता है।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। समारू अपने उसी जीवन पर उतर आया था। मुंगा उसे काबू में करने की चिंता करने लगी। उसका पौरुष उसे कचोटता था और इससे भी अधिक कथा यह थी कि उसने ही तो अपनी दौलत लगाकर समारू का घर सजाया था। यह सब क्या कुछ था ही नहीं? वह जानती थी कि बिंदा का धन चुराना क्या था? बिंदा बहुत मुमकिन है मुंगा पर ही मारणी मन्त्र करे क्योंकि उसे इस दुनिया में धन के सिवाय कुछ भी प्यारा नहीं था। भीतर के आँगन में जो कोने में बिंदा ने हड्डी का ढाँचा छिपा रहा है, कहीं उसमें उसने मन्त्र नहीं फूँक दिया हो। उसने देखा तो नहीं था, पर सुना जरूर था कि जब वह हड्डी का ढाँचा चलने लगता है तो संसार में कुछ भी उसे नष्ट नहीं कर सकता। कहीं वह आ तो नहीं जायेगा।

और तब उसने सोचा।

कला से प्रेम करता है ये समारू तभी तो उसकी ओर नहीं देखता। अब समारू के लिये जो बिंदा वशीकरण बना रही है वह कला को वश में ही तो करने के लिये? मैं अगर उसे किसी तरह उड़ा दूँ तो यह मेरी मुट्ठी में आ जायेगा। लेकिन फिर समारू को क्या मिलेगा? समारू बिंदा के पास जायेगा तो बिंदा को क्या मालूम नहीं हुआ होगा कि मुंगा कहाँ गई? उसने चरवाहों से तलाश करवा भी लिया होगा, वह छूटते ही कहेगी कि मुंगा जो दौलत चुरा ले गई है वह पहले लाँटा जा। समारू कहाँ से लायेगा? जरूर वह मुंगा को चोर समझ कर नफ़रत करेगा और

वशीकरण न मिलने का क्रोध तो उससे जाने क्या न करा ले । वह कहीं छोड़ कर ही चल दिया तो ।

यह सब सोचकर तावीज़ मिलने के दिन वह चुपचाप माँ के घर गई, और जाकर राते हुए उसके पाँव पकड़ लिये । बिंदा की आँखों में आँसू आ गये । वह कठोर डाकिन भी एक वक्त के लिये ममता लिये थी । मुँगा ने बताया कि समारू उसे पकड़ ले गया था । उसी ने धन चुराया है ।

बिंदा ने कहा कि वह उसे वशीकरण तभी देगी जब वह धन लौटा जायेगा वरना वह भीतर के काले पिटारे में रखा ही रहेगा जब तक कि किसी और रईस को उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी । मुँगा की चाल चल गई । वह बहुत प्रसन्न हुई किन्तु वह अपने भाव को छिपा गई ।

कुछ देर बाद बिंदा सो गई । मुँगा भीतर गई और उसने पिटारा खोला लेकिन भीतर से साँप फुफकार मार कर निकला । मुँगा ने भट से उसके सिर को पकड़ लिया । मुँगा जानती थी कि वह उसकी रक्षा के लिये रखा गया देवता था, वह चोरी नहीं करने देगा । हाँ यदि उस तावीज़ का बनाने वाला ही जवाबदेही को जिंदा नहीं रहेगा तो कोई बात नहीं । उसके बाद देवता को इस योनि से मुक्त करना भी मंगलप्रद होगा । उसने साँप को ले जाकर सोई हुई बिंदा पर डाल दिया और जब साँप ने बिंदा को काटा तब वह बर्बरता से उठ कर हँसी और फरसा उठा कर उसने साँप के टुकड़े-टुकड़े करके उसे मार डाला । बिंदा छूटपटाने लगी । उसकी नाक से खून बहने लगा । उसने मुँह खोला कि मुँगा ने डरकर उसके सिर पर वार किया । सिर खिल गया और वह मर गई ।

हत्या से उसे जुनून सा सवार हो गया । जल्दी-जल्दी उसने तावीज़ लेकर वैसा ही एक दूसरा तावीज़ लेकर उसे एक पुड़िया में लपेटा और उस पर कौपटे हाथों से लिखा — ‘समारू’ और बुढ़िया के हाथ पर धर कर वह भीतर चली गई जहाँ से वह हड्डी का ढाँचा ढूँढ लाई और उसे बुढ़िया पर डाल दिया । अभी वह यह करके घर से निकली ही थी कि

समारू आता हुआ दिखाई दिया । मुंगा वहीं एक ढोंके के पीछे छिप गई, और उसने देखा कि समारू भीतर गया ।

समारू ने देखा तो उसका मुँह सूख गया । साँप, हड्डी का ढाँचा, फुरसा और लाश ! अब !

अचानक उसकी नजर पुड़िया पर गई । उसने उसे निकाला । पढ़ा, उसका ही नाम था ।

उस वीभत्सा में भी उसके होठों से खुशी की एक चीख निकल गई । वह उसे लेकर निकला कि दूसरी ओर से हाँफती हुई मुंगा नजर आई । उसने समारू को देख लिया था । अतः छिपने की कोई गुंजाइश नहीं थी । वह वहीं रुक गया ।

‘ले लिया ?’ मुंगा ने मुस्कराकर पूछा, ‘मेरे बारे में क्या कहती थी ?’

लेकिन समारू नहीं बोला ।

मुंगा चौकी ।

‘क्या बात है ?’

समारू ने इशारा किया ।

मुंगा ने जो देखा तो क्रोध से दाँत पीस उठी और उसने समारू को देखकर कहा, ‘तूने किया ?’

‘नहीं,’ समारू ने भर्राये स्वर से कहा, ‘उसे साँप ने काटा है ।’

मुंगा रोई और खूब रोई । उसने रो-रोकर यह भी स्वीकार किया कि वह उसे छोड़ गई थी, असल में तो वही उसकी हत्यारिन थी ।

वह इतना रोई कि समारू को उसे दिलासा देना पड़ा ।

बड़ी मुश्किल से मुंगा उठी । उसके आँसू ही नहीं रुकते थे । समारू ने अपने हाथ से उसके आँसू पोंछे तो उसकी आँखों में एक अजीब-सी ‘चमक’ दिखाई दी । वह उससे चिपट गई । समारू उस समय उसे रोक भी नहीं सका । उसने कहा, ‘अब चल । यहाँ रहना ठीक नहीं ।’

‘मौं तो’, मुंगा ने कहा, ‘मर ही गई । मैं ही तो इसकी वारिस

हूँ । अब अगर इसकी दौलत छोड़ जाऊँगी तो बिचारी कौ यहीं यत्तिणी बन कर रहना पड़ेगा । ऐसा करें क्या ?

‘कैसा ?’

‘इसका धन ले चलें !’

उसने राय ली या निश्चय किया यह तो समारू नहीं समझा । परन्तु उसने भीतर जाकर समारू को बुलाया । समारू ने देखा वहाँ एक पत्थर के हटाने पर एक कुण्ड-सा दिखाई दे रहा था, जिसमें कई सौ सोने की अशरफियाँ पड़ी थीं । दो बोरे रख कर मुंगा ने सबको भर लिया और उनका मुँह बांध कर समारू से कहा, ‘उठा ले ।’

समारू ने दोनों बोरे कन्धे पर धर कर पीठ पर साध लिये और वे फिर एकान्त रास्ते से लौट आये । घर के पास पहुँच कर समारू ठहर गया, क्योंकि वहाँ नौकर थे जिनके सामने वह इस तरह मजदूरों की भोंति बोझ ढोकर नहीं जा सकता था । उसने बोझ उतार दिये । मुंगा घर गई और उसने सब नौकरों को काम लगा कउ मँझली घाटी की तरफ सामान खरीदने भेज दिया । समारू धन ले आया और उसने मुंगा से कहा, ‘ले रख ले ।’

‘तू रख दे हिफाजत से ।’

‘अपना माल तू सँभाल ।’

‘यह तेरा नहीं है ?’

‘यह मेरा क्यों होने लगा । यह तो तेरा है ।’

‘तेरा मेरा करता रहेगा या कभी अकल की भी बात करेगा बुद्धू । लम्बा ही लम्बा है कि कुछ अकल भी है तुझमें ।’

समारू चिल्लाया, ‘खामोश ! वना दो टुकड़े कर दूँगा । डाकिन की बेटी ! मेरी बनने लगी तू ?’ उसने घृणा से थूका ।

बिन्दा की बेटी मुंगा हठात् हँस दी और समारू खिसियाना सा देखता रहा । एक बार मुंगा ने अपनी छातियों पर हाथ फेरा और फिर विचित्र सी चमक उसकी आँखों में फिर नजर आई । उसने कहा, ‘सरदार !

इस दौलत को तू यहाँ से लुटका दे ताकि जब घाटी में सोने का मेंह बरसे तो लोग कम से कम याद रखें कि एक आदमी ऐसा भी था जिसने सोने का मेंह बरसाया था ।’

समारू उसे छोड़कर चला गया । मुंगा ने बोरे उठा कर कोने में रख दिया और बैठकर सोचने लगी । घाटी से लौटे हुए नौकरों ने बताया कि वहाँ बड़ी सनसनी है, क्योंकि फिर कोई अधजला लाश को चिता पर से सरका कर ले गया था । रात जरा बर्फाली थी, चिता भी बुझी-बुझी हो रही थी ।

मुंगा प्रसन्न हुई । उसकी चोली में ही वह तावीज रखा था । अब वह यह सोच रही थी कि किस तरह इसे वह समारू के गले में बाँध दे, जब कि समारू के सामने भी यही समस्या थी । वह सोच रहा था कि किस तरह उसे मौका मिले और वह कला के गले में अपना तावीज लटका दे । वह तो उसे असली ही समझता था । उसने उसे लोहबान की धूनी दी और सोने का खूबसूरत सा हार बनवाकर उसमें एक बड़ी सी कली बनवाई जिसमें उसे रख दिया ।

मुसीबत यह थी कि बिन्दा मर गई थी । वही इसकी तरकीब भी बता सकती थी । मुंगा उसकी हरेक गतिविधि को देख रही थी । एक रात उसने उससे सटकर बैठते हुए पूछा, ‘सरदार !’

‘क्या है ?’ वह कठोर था ।

‘नौकर तो सब बाहर के दलान में सो गये हैं ।’

‘हूँ ।’

‘मुझे डर लगता है ।’

समारू ने उसके कन्धे पर हाथ रख लिया ।

मुंगा ने कहा, ‘क्या सोच रहा है ।’

‘कुछ नहीं ।’

‘तुझे तेरी कसम । बता दे ।’

समारू ने एक लम्बी साँस ली । मुंगा ने साथ दिया । समारू ने मुड़

कर देखा तो मुंगा जोर से हँस दी। कहा, 'याद आ रही है न ? जाकर तावीज उसके गले में क्यों नहीं बाँध देता ?'

'मगर मैं कैसे बाँधूँ ?'

'मेरे पास माँ का बनाया एक तावीज है। चाहे तो तुम्हे दूँ। तू पहन ले उसे। उससे तेरा रास्ता शायद खुल जाये।'

समारू ने कृतज्ञता से देखा। वह उठी और अपना तावीज ले आई। उसने उसे समारू से गले में पहना दिया। समारू अपने आनन्द को छिपा नहीं सका। उसे लगा कला अब निश्चय मिल जायेगी। वह यह भी भूल गया कि वह स्त्री थी। उसने उसे प्रेम से गले से लगा लिया। मुंगा का हृदय धड़कने लगा। ऐसा कठोर था उस भीमकाय का आलिङ्गन कि उसकी साँस रुक गई।

'अरे छोड़ मुझे सरदार ! मैं मरी,' मुंगा ने हाँफ कर कहा ; समारू ने छोड़ दिया और कहा, 'मुंगा ! मेरा एक काम करेगी ?'

'ज़रूर !'

'हाँ तू ही न कोई तरकीब कर कि कला के गले में यह हार पड़ जाय।'

मुंगा का मन विषाक्त हो गया। उसका स्वप्न टूट गया। लेकिन उसके मन में फिर उधेड़बुन होने लगी। तावीज ने तो काम किया है लेकिन खाली वशीकरण से ही अगर काम हो जाया करता, तो मारण क्यों होता ? कला जब तक जियेगी तब तक तो खटकेगी ही। ऐसी कोई तरकीब हो कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। उसने मुस्करा कर कहा, 'सरदार ! यह भी हो जायगा।'

'कैसे ?' समारू ने कहा।

'यह न पूछ,' मुंगा ने कहा, 'मैं बिन्दा की बेटी हूँ।'

समारू देखता रहा।

'एक काम कर सकेगा तू ?'

'क्या ?'

‘मुझे नहला देगा तू दूध में केसर धोल कर। फिर मैं तारा की पूजा का त्रिकोण बना कर घट धर कर चली जाऊँगी उसके पास। पर पुरुष ही को शक्ति को नहलाना चाहिये। तুমमें इतनी हिम्मत है!’

अपने मतलब के श्रवण समारू ने कहा, ‘इसमें क्या बड़ी बात है, लेकिन तू तो खंडित शक्ति है न?’

‘खंडित हूँ मरघट के लिये। ऐसे नहीं,’ मुंगा ने कहा।

और सचमुच समारू ने उसे निरावृत्त करके ऐसे नहला दिया जैसे वह स्त्री नहीं थी कोई भेड़ थी। मुंगा का हृदय आतंक से भर गया। इस आदमी में काम नहीं है? नहीं है। पर यह उसके प्रेम में अंधा है! उसका इतना अपमान कभी नहीं हुआ था। समारू ने देखा जब वह नहा कर खड़ी हुई उसके नेत्र अंगारों की तरह जल रहे थे, और बार-बार वह दाँत किटकिटाकर फुंकार उठती थी! समारू बहुत खुश हुआ। उसने ऊपर हाथ उठा कर कहा, ‘उस्ताद! देखो! यह है शक्ति! यह तुम्हारा सपना पूरा करेगी। देखो। मैं समारू, किंचुल का बेटा, बोंगा का नाती, फिर अपने अधिकार प्राप्त करूँगा। फिर ऐड़ी और सैम के मंदिरों में व्योपारी मेरी ही चर्चा करेंगे। फिर मैं तारा के मंदिर का रास्ता साफ़ करवाऊँगा।’

मुंगा मूर्च्छित होकर गिर गई। समारू ने उसे कपड़े पहना दिये और सुला दिया। उसका लगा वह निश्चय ही सफल होकर रहेगा। अब कोई बाधा नहीं थी।

मुंगा को जब होश आया तो उसकी इच्छा हुई कि वह कला की गर्दन में दाँत गड़ा कर उसका लहू पी ले। वह चुपचाप रोई भी। लेकिन जब सुबह उठी तो मुस्करा रही थी। उसने अपना रास्ता सोच लिया था।

पाँच दिन तक मुंगा बिल्कुल गुमसुम बनी रही। बोली ही नहीं। समारू देखता और सोचता कि इस पर देवी आ गई है।

छठे दिन मुंगा हँसी और सातवें दिन रोई? आठवें दिन वह

साधारण स्त्री हों गई और मुस्कराती हुई सुबह उठी। उसने सुन्दर कपड़े पहने, अपने बाल काढ़े और गालों पर सुर्खी लगाई, आँखों में अंजन पार लिया और मालिन बन कर बाहर आई।

बिचली घाटी में जो उसने जड़ी-बूटियों और बन के फूलों की ढेर लगाई तो भवन का नौकर उसे कला के पास ले गया। उसने कला को देखा तो भीतर ही भीतर जल गई मगर सलाम किया और फूल देकर पैसे ले आ गई। इसी तरह वह पन्द्रह दिन तक गई तो सोलहवें दिन उसे कला एकांत में मिल गई। उसने बातें शुरू कर दीं और बातें ही-बातों में उसने पूछा, 'बीबी जी ! कभी ऊँचे पहाड़ पर नहीं गईं ?'

'नहीं,' कला ने हँसते हुए कहा, 'मैं तो इतना चढ़ भी न सकूँगी।'

'बड़ी आदमिन हैं, कैसे चलेंगी। लेकिन खच्चर तो खूब चढ़ जाते हैं। एक बार देखिये तो ! खूब बड़े लोगों के साथ आइये और देखिये। वहाँ जो बात है यहाँ कहाँ ? मैं संग चलूँगी।'

कला ने उत्सुकता से पूछा कि वहाँ है क्या ? बस मुँगा ने वह झड़ी छोड़कर तारीफ़ की कि पहाड़ बोलने लगा। कला की निगाहें बार-बार लालच से ऊपर उठने लगीं। उसे लगा उस रहस्यमय लोक में सचमुच शायद बड़ी सुन्दरता होगी।

तीन दिन बीत गये। समारु को कर्नल का पत्र मिला कि वे सब लोग ऊपर आ रहे हैं। पहाड़ों के सौंदर्य के साथ ही यदि उनसे भी मुलाकात हो जाये तो यात्रा सफल हो जाये। कला ने ही ऊपर आने की ज़िद की है। उसके साथ और भी पार्टी होगी। पुरुष भी, स्त्रियाँ भी। वे सब जब चढ़ाई से थक जायेंगे तो उनका ही आसरा लेंगे। एक मालिन है जो राह दिखाती हुई ऊपर पहुँचायेगी। उसे इनाम दिया जायगा। क्योंकि चढ़ाई खतरनाक है, लड़की बहुत कोमल है।

समारु ने जवाब भेजा—यहीं भोजन करें। नीचे से खाना कतई न लायें। ऊपर सब इंतजाम होगा। वह कृतार्थ होगा। नमक से नमक को अदा करेगा तो उसे खुशी होगी। फिर इस सप्ताह में अच्छे लोग

आये इससे बढ़ कर और क्या होगा । वह अपना भी राह दिखाने वाला भेज रहा है ।

निश्चित होने पर आखिर वह दिन भी आ गया ।

समारू का घर इस समय अपना रूप ही बदल चुका था । अब वह पुरानी बात नहीं थी । बादलों के बीच में बसे घर में निरंतर आग जलता थी और उससे गर्मी सी छा गई थी, जिसने आज तक की सीलन को जला दिया था । कमरों में लोहवान की खुशबू भूलती थी और मुंगा ने इतने प्रबंध कर दिये थे कि स्वयं समारू को ताज्जुब होता था । मुंगा तो नीचे चली गई थी, समारू ने अपने राह दिखाने वाले को भी भेज दिया था और अब वह घर देखने लगा । उसे उसमें कहीं भी त्रुटि दिखाई नहीं दी । केवल मुंगा के दोनों बोरे उसे लकड़ी वाली काठरी में खाली पड़े मिले । उसकी समझ में नहीं आया कि यह स्त्री कितनी विचित्र थी । किंतु इस समय उसके पास सोचने का अधिक समय नहीं था । बार-बार कला का सुन्दर रूप उसकी आँखों में नाच उठता था । बार-बार उसके मुँह से निकलता था, 'उस्ताद आज देखना ! आज देखना !'

और फिर वह कुछ नहीं कहता था । वह इतना गंभीर-सा दिखाई दे रहा था कि बयान नहीं । उसने नहाकर चमड़े के ज़रीदार कपड़े पहने थे, और कन्धे पर बन्दूक लटकाकर कमर में आज साने की मूँठ का बड़ा सा छुरा लगा लिया था । उसके चमड़े के जूते चमक रहे थे और वह अपनी भीम काया को लिये आज बहुत ही प्रसन्न था । इतना कि उसने मुंगा की शराब में से थोड़ी पी ली थी, जिससे उसे एक हल्की-हल्की-सी मस्ती छा रही थी । उसकी रसोई से कीमती सुगंधित भोजनों की गंध आ रही थी । सुनहली ज़री से सुसज्जित मखमली पर्दे लटक रहे थे । चाँदी के बर्तनों का कहीं अंत नज़र नहीं आ रहा था । कीमती शराब थी और कॉच के बड़े-बड़े पात्र लैम्पों की तेज़ रोशनी में चमकने के इंतज़ार में थे । पलंगों पर मोटा मखमल बिछा था । मोटे-मोटे कालीनों से ज़मीन सजी हुई थी । निचली घाटी के सुगंधित फूल मीना के पात्रों

में धरे थे। चित्रों में अभूतपूर्व सुषमा थी। नौकरों और नौकरानियों के वस्त्र अत्यंत मूल्यवान् थे। खाने की ऐसी अपूर्व गन्ध थी कि उड़ते हुए पक्षी खिड़कियों के पास आ गये थे।

वक्तु हुआ कि अतिथि आ गये। समारू अपनी देहलीज़ पर उनका स्वागत करने गया। कर्नल सावंत उससे गले मिला। मुंग्गा मालिन वनकर कला के साथ थी। सब लोग उस मकान की सजावट को देखकर मन-ही-मन आश्चर्य करने लगे। मकान ऊँचाई पर बनने के कारण छोटा तो था, लेकिन इतने ऊँचे पहाड़ों के बीच में बादलों के ऊपर बसा हुआ वह मकान स्वर्ग का एक टुकड़ा-सा नज़र आता था। छत से बिल्लौर के टुकड़े लटकते थे जिनमें भाड़फानूसों का चमकती किनारियाँ दीख रही थीं। बातें करते-करते सब लाग खाने के कमरे में गये। केवल कला नहीं गई। वह बहुत थक गई थी। पता नहीं क्यों उसने एक बार मुंग्गा की ओर देखा। मुंग्गा मुस्कराई। कला को जैसे चैन ही नहीं था, न वह खाने को ही राज़ी हुई। उसके वस्त्रों में सिलवट-सी पड़ गई थी और गालों पर थकान का पीलापन झलक रहा था। सिर के बाल फैले हुए बहुत ही खूबसूरत लग रहे थे। आकाश में सूरज ढलने लगा था।

वह बार-बार पोंव से देहलीज़ का हल्की टोकर देती, लेकिन भीतर नहीं जाती थी। कर्नल सावंत ने बुलाया। जब वह नहीं गई तो वह बुड़बुड़ाया, 'बड़ी जिद्दी लड़की है।' समारू ने अभ्यर्थना की, लेकिन वह ऐसे खड़ी रही, जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं।

पास में कूड़े के ढेर पर जो लोमड़ियाँ बैठी थीं उनकी ओर वह देखती रही। समारू ने थाल में खाना उसके सामने वहीं लेजाकर पेश किया तो उसने खाने को लोमड़ियों के सामने फेंक दिया। वह कीमती मांस इस तरह फेंका जाते देखकर कर्नल सावंत को भी कुछ अजीब-सा लगा। केवल मुंग्गा हल्के-हल्के मुस्करा रही थी।

‘ज़हर ! ज़हर !’ कला ने बड़बड़ाया। मुंग्गा आगे बढ़ आई। उसके

अपने हाथ में इस समय एक तश्तरी थी जिसमें कुछ मिठाई रखी थी। वह उसके पास आई और उसने उसके मुँह में प्रेम से उठाकर एक मिठाई रखी। कला को अच्छी लगी। उसने पूरी तश्तरी खाली कर दी। और ऐसी थक गई जैसे उसके पोंवां में जान ही नहीं थी। वह वहीं देहलीज़ पर बैठ गई। और वहीं चौखट पर सिर धर कर वह गहरी नींद में सो गई।

मुंग़ा के होठ कुटिलता से मुड़ गये।

कर्नल सावंत ने समारू की ओर देखा। समारू नासमझ-सा खड़ा था। सावंत ने लड़की को उठा लिया और उसे बगल के अत्यंत सुसज्जित कमरे में मुला दिया। जिस पलंग पर वह लिटाई गई उस पर अत्यंत मूल्यवान मखमल बिछा था, लाल, खूनी रंग का मखमल। खिड़कियों में लगे बिल्लौरी कोंच में से जो रोशनी आ रही थी, वह उसके कोमल और सुन्दर मुख पर गिरने लगी।

कर्नल दोस्तों में लौट आया और फिर सब लोग सूर्यास्त का वह अपूर्व दृश्य देखने निकले, जिसके कारण सारा आकाश ऐसा चमकता था, जैसे पर्वतों में खूनी आग लग गई थी। समारू कुछ दूर संग चला और उसे याद आया कि वह अपनी दूरबीन भूल आया है। वह शीघ्रता से लौटा। उसका दिल धकधक कर रहा था। मुंग़ा ने उसे देखा तो व्यंग्य से मुस्कराई किंतु समारू उसे नहीं देख सका। भीतर चुपचाप वह चुपचाप कला के कमरे में दबे पाँव गया। उसने आतुर हाथों से उसके गले में वह तावीज़ बाँधा जोकि उसके हारों में मिल गया और समारू तुरंत ही दोस्तों के पास लौट गया।

मुंग़ा बाहर ही बैठ गई। उसने आध घण्टे के बाद सुना कि वह जाग गई थी और बक रही थी। मुंग़ा प्रसन्न हो उठी। उसकी दोनों बार की जड़ी-बूटी काम दे गई थी। वह चुपचाप दूसरी ओर जाकर काम में लग गई।

धीरे-धीरे प्रकाश ढलने लगा और फिर स्त्री और पुरुष अलग-अलग

टुकड़ियों में बँटकर बातें करते हुये पहाड़ी रास्तों में तितर-बितर से घर की तरफ बढ़ने लगे ।

स्त्रियों की एक टोली ने देखा कि कला चली आ रही है और उसके तमाम बाल बिखरे हुये हैं । वह उनकी ओर ऐसे देख रही थी, जैसे किसी को पहचानती ही नहीं थी । उन्हें अजीब-सा लगा । कैसी लड़की है ! पहले तो देहलीज पर सो गई और अब वहशी बन रही है । कर्नल ने इसे अपने लाड़-प्यार से इस कदर बिगाड़ दिया है ! लेकिन कला नहीं रुकी । वह बढ़ती ही चली गई और उनके देखते-देखते ऊपर वाले रास्ते पर चढ़ गई । स्त्रियों को कौतूहल तो हुआ परन्तु वे विचुम्बध अधिक हुईं कि उनका अपमान किया जा रहा था !

वे आगे बढ़ गईं । कला चलती रही । अचानक एक खरगोश उसका रास्ता काट गया तो वह ठठा कर हँसी, उसने ताली बजाई और उसके पीछे दौड़ी । फिर वह रुक गई और पथरों से बातें करने लगी । और फिर उसने उन्हें अपने हाथ से इसलिये मारा भी कि वे जवाब नहीं देते थे । उसकी इन हरकतों को दूर से एक दल ने देखा ! परन्तु जब तक वे देखते, तब तक वह एक बहुत बड़े ढोके की आड़ में आ गई थी । उसके बाद कर्नल चौंक उठा । उसने एक अजीब सी आवाज़ सुनी ।

‘सरदार !’ उसने कहा, ‘यह कौन बोलता है ।’

‘यह शायद गिद्ध है,’ समारु ने कहा, ‘कभी-कभी वह तकलीफ में इस तरह चिल्लाता है ।’ लेकिन उसके चेहरे पर घबराहट थी ।

‘मुझे तो यह एक औरत की सी आवाज़ लगी,’ एक और व्यक्ति ने कहा ।

ठीक इसी समय उससे भी तीखी आवाज़ थरथराती, चुभती हुई आकाश में गूँज उठी जो इधर-उधर के पहाड़ों की चोटियों से भी टकराई ।

सब ने सिर उठाकर देखा । लंबी चट्टान आगे तक निकल कर शून्य में ऊपर टँगी थी और ऐसा लगता था जैसे महाकाल का एक

भयानक दाँत नीचे के अंधकार को चबाने के लिये चमक रहा था, काला, काला दुर्दांत.....

और वहीं कला धीर-धीरे बढ़ रही थी, जैसे वह बेहोश थी और पर्वतों को प्रतिध्वनित करती हुई पतली तीखी गिद्ध की सी आवाज उसके गले से बार-बार निकलती थी.....

‘बेटी कला !’ कर्नल चिल्लाया, ‘वह पागल हो गई है !’

‘पागल,’ समारू चिल्लाया और अपनी भीम शक्ति से उसके लिये भागा । वह चिल्लाया, ‘कला... ..कला.....’

उसका स्वर मुनकर कला मुड़ गई और तब उसने उसे देखा तो घृणा और आतंक की उसके मुख से एक लंबी चीख निकली और समारू झपटा, मगर उछाल एक पत्थर से टकरा गई, उसका सिर फट गया, वह मूर्च्छित होकर गिरा और कला भयानकता से हँसी । उस हास्य में वह अपना संतुलन खो बैठी और—‘कलाSSSS’ कर्नल सावंत ने चिल्लाने हुए हाथ उठाया, मगर कला अब फिर गिद्ध की भाँति चिल्ला उठी और उसके बाद उसका शरीर एक बार आकाश के सामने झूलता हुआ दिखाई दिया । तब समारू ने एक क्षण बाद सिर उठाया तो वहाँ कोई नहीं था । स्त्रियों भयानकता से रो उठी थीं । और नीचे से घाटी चिल्ला रही थी । पुकार रही थी । पुकार रही थी ।

‘कला हो.....’ समारू चिल्लाया... और पाँचो पहाड़ हाथियों के झुण्डों की तरह भीषण स्वर से चिंघाड़ उठे । परंतु और कोई उत्तर नहीं आया । पर्वतों में टकराता स्वर अपने प्रसार को और भी फैलाता चला जा रहा था फैलाता चला जा रहा था ।

समारू पागल-सा उठ खड़ा हुआ । वह सीधा घर के भीतर गया । सारी पार्टी कर्नल को उठा ले आई, क्योंकि वह मूर्च्छित हो गया था । लेकिन समारू उनके पास नहीं था । वह शीशे के सामने खड़ा था ।

अंतिम बार कला ने उसकी ओर देखकर घृणा से विकृत हास्य

इन पर्वतों में प्रतिध्वनित किया था। क्या वह सचमुच इतना कुरूप था !
उसने शीशे में भाँका। राक्षस !

भीषण राक्षस !!

समारू ने लैम्प उठाकर धरती पर दे मारा। आग बढ़ी, उसने भारी पर्दे को पकड़ लिया.... समारू ने नहीं देखा। उसने अपना मुँह उस जलते कपड़े के बीच में दे दिया और अतिथियों ने विचित्र यंत्रणा भरी आवाज़ सुनी। मुंगा दौड़ कर आई। उसने कहा, 'समारू ! पागल न बन !'

उसकी चीख़ गूँज उठी लेकिन समारू ठठा कर हँसा। और उसी समय आकाश में वज्र गर्जन हुआ। तूफान मँडराने लगा था। सारे पहाड़ ऐसे चिल्ला उठे जैसे शेरों के भुण्ड गरज कर टूट पड़े थे।

मुंगा के नेत्र भय से फट गये।

'तारा !' समारू बढ़ा और जब तक पार्टी के लोग दहशत से भर कर आते, जब तक मुंगा का चीत्कार उठ कर पूरी तरह गूँजा, समारू ने उसे पकड़ लिया और पार्टी के लोगों ने देखा कि काले, जले, विकृत, भयानक मुख वाले समारू ने, जिसके नाक के छेद और दाँत मसूड़ों में दिखाई दे रहे थे, मुंगा को उठाकर जलता आग में फेंक दिया। हवा तेज़ चल रही थी। आग ने घर को घेर लिया। सब बुरी तरह चिल्लाने लगे। मुंगा की अंतिम चीख़ गूँजी और समारू वीभत्सता से ठठा कर हँसा और आकाश में उसी समय प्रचण्ड निनाद हुआ। धुँआ घट गया था। नौकर, बकरे, अतिथि टूटती शोलों के नीचे दबकर चिल्ला रहे थे। उस दारुण बेला में बिजली कौंध उठी। समारू फिर चिल्लाया, 'कल्ला SSSSS.....अब तू मुझसे नफरत नहीं करेगी। देख मैंने अपना मुँह जला लिया है, अब मैं बदशकल नहीं हूँ ... देख' वह बाहर भागा।

चारों ओर लपटें छा रही थीं। निचली घाटियों से लोग शोर मचाते, मशालें जलाये ऊपर चढ़ते चले आ रहे थे, आग इतनी

भयानक थी कि उसने किसी को भी नहीं निकलने दिया । समारू द्वार में से भागा । वह बुरी तरह जल गया लेकिन रुका नहीं । वह फिर बियावान में भाग चला ।

लेकिन दृष्टात् वह ठिठक गया । काले जले हुए चेहरे में सफेद-सफेद चमकती आँखें दहशत से फटी सी रह गईं । उसके रोंगटे खड़े हो गये ।

यह सामने कौन खड़ा था !

वही !

वही उस्ताद !

उसे विश्वास नहीं हुआ ।

उसे भय लगा ।

उसने बंदूक हाथ में उतार ली और पुकारा, 'कौन है तू । कौन है !'
बिजली चमकी ।

वही आकृति । निर्भय और गंभीर ।

उस्ताद जैसे मुस्कराया । उसने कहा, 'तू मुझे नहीं जानता ?'

वह उस प्रश्न को सुनकर थर्रा गया ।

'जानता हूँ,' वह भारी स्वर से चिल्लाया, 'लेकिन तू मेरा है कौन ? तू मेरा कोई नहीं है ।'

उस्ताद ने कहा, 'डाकिन के धन से ऐश करने चला था समारू ! क्या तेरी ही रंगों में हूण राजकुमारी का खून है ? देख मुझे आँख खोल कर देख । मैं हूँ । बांगा के गुरु का नाती ।'

उसने देखा, वही था । वे ही हाथ, वही मुख, वही पतली आँखें । वही नाक के नथुनों के बाद से शुरू होने वाली मूँछें । वही गालों की उठी हुई हड्डियाँ, वही बीस बालों की दाढ़ी ।

बिजली कड़की और उसके प्रकाश में उसने देखा, वही खड़ा था । उस्ताद ने कहा, 'मूर्ख ! तू कभी भी कला के लायक नहीं था । तूने नीचे और ऊपर, दोनों के शासक वंशों को अपनी जलन में समाप्त कर दिया ।

१ मुंगा के हाथों में खेल गया। उसी ने कला को कुछ खिला कर पागल कर दिया।'

‘लेकिन मैंने मुंगा को आग लगा दी है,’ वह चिल्लाया।

‘लेकिन समारू ! किंचुल का बेटा, बोंगा का नाती, खुद तेरे घर में आग लग गई है, तू जल गया है, तेरा सर्वनाश हो चुका है...तेरा सर्वनाश हो चुका है...’

उस्ताद अट्टहास करने लगा। आकाश भी हँसा और फिर डरावना अंधकार धरती पर विकराल हास्य बन कर ज़हरीले सोंप की फुफकार वाले पवन डसने से तड़पता हुआ गूँजने लगा

समारू ने बंदूक उठा कर धोंय से उस्ताद के गोली मारी और फिर उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

जब निचली घाटी और बिचली घाटी के लोग ऊपर पहुँचे तब उन्होंने देखा कि समारू का भवन धू-धू कर जल रहा था, कोई भी बाहर नहीं था, केवल समारू जला हुआ सा पड़ा था और उसने अपने सिर में अपनी ही बंदूक से गोली मार ली थी...

लोगों ने वह वीभत्स दृश्य देखा तो भय से आँखें फेर लीं। वह ऐसा पड़ा था जैसे कभी महिषासुर गिरा होगा.....

सुरेश्वर ने कहा, ‘यह तो प्रगट रूप से ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का विषय है।’

तब खाँडेकर, धीरूमल और मोहन ने उत्सुकता से सुरेश्वर की ओर देखा, तो कहने लगा :

४

उन दिनों अँगरेजों की ताकत का सूरज बीच आसमान में था। न कोई उनका विरोध करता था, न सिर उठाता था। कहीं-कहीं कुछ इक्के

दुश्के क्रांतिकारी बम बनाने की चेष्टा करते और गिरफ्तार हो जाते । क्योंकि पुलिस का खुफिया विभाग बड़ा ही सतर्क था । ऐसे ही समय में राजा माधव सिंह का बेटा कुँवर यादव सिंह विलायत से पढ़ कर लौटा । उन दिनों विलायत जाना ही बड़ी चीज थी । जिस पर राजा का बेटा पढ़ कर, लिख कर, लॉटे, यह तो बड़ी क्या बहुत बड़ी चीज थी । यादव सिंह युवक और बिल्कुल साहबी आलम का आदमी था और उसे आते ही अँगरेजों ने बड़ी दरियादिली से अपनाने की कोशिश की । ताकि वह भी उनके राज की उनके ही शब्दों में तारीफ़ करे । कहीं ऐसा न हो कि वह भी नये पढ़े-लिखों की तरह उनके राज पर छिंटाकशी करने लगे । उस समय तक कांग्रेस नहीं बनी थी । अँगरेजों में से बहुत से ऐसे आते थे, जो पुराने खान्दानों के लोग थे । वे यहाँ के कुलीनों की इज्जत करते थे, हालाँकि वे उनको भारतीय समझने के नाते अपने से जरा कम ही समझते थे । यादव सिंह इन सब को देखता था लेकिन वह उसे चुपचाप पी जाता था । राजा माधव सिंह पूरी तरह से खुश थे क्योंकि राजा के नाम पर उनका दर्जा कोई बहुत बड़ा नहीं था । वे कोई इक्कीस तोपों की सलामी के हकदार नहीं थे । पर अब उनके यहाँ बहुत बड़े बड़े साहब लोगों की चिट्ठियाँ आया करती थीं ।

कुँवर यादव सिंह को आखिरश हिंदुस्तान में मजा नहीं आया । वह चित्रकला का पारखी था । वह चित्रकला का आलोचक भी था । यहाँ आया तो उसे दो बंगाली चित्रकार मिले, जो कि पुराने ढंग को नयी तरह से प्रस्तुत कर रहे थे, या दक्खिन के चित्रकार मिले जो कि यूरोप की नकल के बाद अपने नये प्रयोग कर रहे थे । और भी जिस चीज़ की कमी थी, वह थी वह 'बोहीमियन' वातावरण की उपस्थिति, वह धन को पानी की तरह बहाने की मस्ती, और कला संसार में ही डूबे रहने की बात । उसका जी ऐसी हालत में कब तक लगता । लेकिन अँगरेजों को उसकी जरूरत थी । बड़े लाट ने भी उसे खुश हो कर बुलवाया और उसे राजस्थान में किसी काम पर भेज दिया । और वह भी भरतपुर के पुराने इलाके में ।

जाटों में यादव सिंह को अच्छा लगा, क्योंकि जाट मस्त लोग थे । उन्होंने एक ज़माने में हुकूमत की थी, और उनकी हुकूमत नयी थी । उसने मुगल साम्राज्य के दिल को उजाका था । उसको बाद में भी अँग-रेज़ जीत नहीं पाया था, बल्कि अँगरेज़ों से उनकी संधि हुई थी, इसलिये ही, पर शिक्षा के अभाव में वहाँ के अधिकारी खाते-पीते मस्त रहने लगे आदमी थे । उनके समाज में स्त्रियों और विवाह संबंधों की रोक-टोक नहीं थी । वे स्त्री की जाति पर कोई ध्यान नहीं देते थे । कोई भी स्त्री जाट के घर आकर जाटनी हो जाती थी । ऐसे हुड़दंग और मस्त लोगों में यादव सिंह को जर्मन जाति के कुछ लक्षण दिखाई दिये ।

वह महाराजा साहब से मिला । वे पुराने ज़माने के आदमी थे । उन्होंने उसमें कोई दिलचस्पी विशेष नहीं ली । पर उपेक्षा भी नहीं देखाई । अँगरेज़ उनसे ज़रा घबराते थे । और इसीलिए अँगरेज़ रजिडेंट को आगरे में ही रख कर, उन्होंने अपनी कारगुज़ारियाँ करने को यादव सिंह जैसे भारतीय को ही वहाँ भेजा ।

यादव सिंह जब पहले भरतपुर में रहा तो उसकी इच्छा हुई कि अब वह वहीं रह जायगा । लेकिन अतीत कब तक उसका मन बहला सकता था । जब उसने वर्तमान परिस्थिति को आँख खोल कर देखा तो उसका मन उचटने लगा । वह बड़े लोगों में उठता-बैठता । और सिवाय बड़े डॉक्टर के उसे कोई ऐसा आदमी नहीं मिला, जिससे वह यूरोप के बारे में बातें करता । उसके बाद एक रावसाहब और थे जो कि काफी शिक्षित थे । शिक्षा का मतलब यादव सिंह की नजर में यूरोप की शिक्षा से था । स्थानीय विद्वान अरबी, फारसी और संस्कृत पढ़ते थे और उनमें अध्ययन की वह आलोचनात्मक प्रणाली नहीं थी, जो कि यूरोपीय विद्वानों में होती थी । वे एक दफे में बैठ कर पूरी की पूरी अष्टाध्यायी, या महाभाष्य या अमरकोश, या शाहनामा सुना सकते थे, मगर अगर उनसे पूछा जाता कि इनका ऐतिहासिक समय या वातावरण क्या है, तो वे विश्लेषण नहीं कर सकते थे ।

धीरे-धीरे उसकी तबियत ऊबने लगी। वह बेटोवन के संगीत को चाहता था, वह होमर पढ़ता था, वह शेक्सपियर चाहता था और रेफेल, रुबन, टीशीयिन, लियोनार्डो आदि सुंदर चित्रकारों की बातें पसंद करता था। तब फिर उसका वक्त आखिर कटता भी कैसे। आधुनिक सभ्यता जब पुरानी सभ्यता में पड़ी तो समस्या खड़ी हो गई।

अतीत के जाट वीर थे, उनके चौड़े सीने, ऊँची चढ़ी हुई मूँछें और ऊँची पगड़ी, वे सब तो अब थे कहाँ? उसे जो लोग नज़र आते वे गाढ़े की अंगरखियाँ पहनते और उनकी धोतियाँ घुटनों से उपर जाँघों पर ही खतम हो जातीं। औरतें भारी धाँघरे पहनती और उनकी ओढ़नी पीछे की तरफ से इतनी नीची होती कि सारे धाँघरे को ढँक लेती। उनके गहने भी पुराने ज़माने के थे। यादव सिंह उनके चेहरे भी नहीं देख पाता, क्योंकि वे लंबे घूँघट काढ़ती थीं। उसे मैना और ऐसी ही गूजर आदि पुरानी जातियाँ देख कर एक मध्य-कालीन रहस्य की-सी भावना की अनुभूति होती, वह केवल इसलिये कि वह उनसे दूर था। उनके जीवन को वह विचित्र समझता था। डाँग की कथाएँ वह कभी-कभी सुन पाता तो उसे पुराने जमाने की याद आती थी, कि वहाँ सरकारी अफसर जाने में हिचकिचाते थे। गूजरों की वह पहाड़ी बस्ती यद्यपि विभिन्न राज्य में बँट गई थी लेकिन वे अब भी अपने को एक ही 'डाँग' में गिनते थे। उन्हें जैसे दो सौ, तीन सौ बरस के पुराने निजाम ने भी इतना प्रभावित नहीं किया था कि वे अपने को राज्यों के हिसाब से बाँट लेते। कहते थे वहाँ घट चोरी होते थे। ऊँट कोई छोटी चीज़ नहीं है कि बगल में छिपा ली जा सके। यादव सिंह को कल्पना करनी पड़ती कि ऊँट को छिपाने के लिये अवश्य ही ऐसी ऊबड़-खाबड़ ज़मीन की जरूरत थी जो कि काफी घुमाव फिराव लिये हो।

इसी परेशानी में कुछ दिन बीत गये।

एक दिन उसकी निगाह अपनी ऊँची हवेली के नीचे के एकांत कोने में रहने वाले मकान मालिक की ओर गई। पहले दिन वह आया

था। उस रोज उससे किराया तय करने की बात हुई थी। उसी दिन जरूर वह बोला था। फिर वह कभी नहीं बोला। जो पचास रुपये यादव सिंह उसे देता था, वही उसकी आमदनी थी। उसने ऊपर के तीन कमरे नहीं दिये थे और कहा था कि उसने स्वयं यह नहीं देखा था कि ऊपर था क्या ?

‘जी हाँ,’ उसने कहा था, ‘उन कमरों में पहले मेरे पिताजी ने एक किरायेदार बसाया था। परंतु वह किराया दिये बिना गायब हो गया। तब मैं छोटा था। लेकिन उन्होंने कुछ माल ढूँढ़ने के खातिर भीतर प्रवेश किया जरूर था। वहाँ कुछ मिला नहीं। तब से वे बंद ही हैं। वे फिर उस हिस्से को किसी को उठाते नहीं थे। अब जरूरत ही नहीं पड़ती क्योंकि वैसे ही इसमें यह बीच की मंजिल में बारह कमरे हैं, चार बरामदे हैं, उठने लेटने की दो बड़ी बड़ी छत्ते हैं। आपके चौक नीचे के फाटक के मैदानों में और वहाँ बनी कोठरियों में आराम से रह सकते हैं।’

‘तुम कहाँ रहते हो ?’

‘मैं नीचे रहता हूँ दक्खिन के कोने में।’

बस इतनी सी बात थी। और कुछ नहीं।

छोटा आदमी समझ कर यादव सिंह ने भी उसमें कुछ दिलचस्पी नहीं ली, न किसी ने उसके बारे में कुछ ज़िक्र ही किया। बात आई गई खत्म हो गई।

भरतपुर में काया नामक एक स्थान है। वहाँ गुँसाई जी रहा करते थे। उनके चेले दूर-दूर से उनके दर्शन करने आते, और वहाँ खूब बड़े-बड़े आदमी भी आते थे। एक दिन उन्हीं में से एक कोई सज्जन यादव सिंह के पास आये और बोले, ‘मैं दरभंगा से आया हूँ और मुझे आप से कुछ काम है।’

‘कहिये,’ यादव सिंह ने चौंक कर कहा।

‘भीतर चलिये।’

यादव सिंह को पहले खतरा महसूस हुआ पर फिर उसे अपने ऊपर भरोसा आई। वह व्यर्थ डर रहा था। उसने कहा, 'आइये'।

ऊपर वह सज्जन आकर बैठे तो उन्होंने कहा, 'मैं दरभंगा के एक धनी व्यक्ति का पुत्र हूँ। लेकिन उनका नाम नहीं बता सकूँगा।'

'क्यों?'

'मामला ऐसा ही है।'

यादव सिंह को सुनकर अचरज हुआ।

उसने फिर कहा, 'आप जरूर इस बात पर ताज्जुब करते होंगे, लेकिन मैं क्या करूँ। वैसे मैं आप को बता सकता हूँ कि मेरे पास इस मकान का नक्शा है, जिसमें बताया गया है कि ऊपर की तरफ़ तीन कमरे हैं।'

यादव सिंह ने गौर से देखा।

'आप से कहता हूँ क्योंकि मैंने यह जानकारी हासिल कर ली है कि आप यहाँ की सरकार के मातहत नहीं हैं। आप मेरा काम कर सकते हैं?'

यादव सिंह ने कहा, 'यह सच है कि मैं इस जगह की सरकार का मातहत नहीं हूँ और मुझे हर चीज़ की जवाबदेही आंगरे के अंगरेजी रेजीडेंट से नहीं, दिल्ली के बड़े लाट साहब से करनी होती है। लेकिन फिर भी मैं ऐसा काम तो नहीं कर सकता जिसकी वजह से यहाँ की सरकार वहाँ मेरे खिलाफ़ लिखे और मुझसे फिर रंजिश के डर से जवाब तलब किया जाये।'

'बहुत खूब,' आगंतुक हँसा, 'आप अंगरेजी पढ़कर कानूनी बात करते हैं, और मैं भी विदेशों में घूमकर हाल ही में आया हूँ। आप तो ऐसे कहते हैं जैसे यह रियासतें सचमुच अंगरेजों से टकराने की हिम्मत रखती हैं। लेकिन मैं आपसे सरकारी काम नहीं चाहता। बात असल यह है कि मैं जिस चीज़ को चाहता हूँ वह इस मकान मालिक के कब्जे में है। वह असल में इस घर का मालिक नहीं है। यहाँ पहले एक जाट सरदार रहते थे। इस आदमी का बाप उनका महाराज था, फिर यह खानदान किसी तरह मिट गया और इसका बाप यहाँ का कारिंद।

बना, फिर जब किसी ने इस पुराने मकान पर ध्यान नहीं दिया, तो मालिक बन बैठा। यह न तो यहाँ के बारे में कुछ जानता है, न जाकी इच्छा ही रखता है। मुझे सिर्फ ऊपर के कमरों में रखे कुछ कागचाहिये जो इस जाहिल से मैं माँगूँगा तो खाम्ख्वाह डरेगा और दरायेगा। बात का बतंगड़ करेगा जो मैं कतई पसंद नहीं करूँगा। उसमें थोड़ा रुपया भी दे सकता था, लेकिन एक राजा होने के न आप खुद जानते हैं कि जब कोई रईस आदमी कुछ पैसे का लालच दे है तो यह छोटे लोग आर ज्यादा लालच करते हैं। वे समझते हैं उनसे कोई ऐसी बात अटक गई है कि जितना चाहे तेल निकाल सकते हैं कोई बात भी तो नहीं है।' उस व्यक्ति ने रुक कर कहा, 'बस आप ऊले चलें मुझे, और मैं अपनी चाबियों से उसका, कोई एक ताली लगा ताला खोल डालूँगा। फिर हमारी आपकी सैर हो जायगी। अगर कागज़ात यानी दस्तावेज़ मुझे मिल जायेंगे तो मैं ज़िन्दगी भर आपका एहसास मानूँगा क्योंकि उनके ज़रिये से मुझे अपने नाना की सारी जायद मिल जायगी जो कम-से-कम चालिस लाख रुपया सालाना देती है और उन दस्तावेज़ों के न होने से यह जबरदस्ती के रिश्तेदार बनने वालों हाथ में निकल जायगी। मैं समझता हूँ आप मेरी जगह होते तो य कहते जो मैं कह रहा हूँ।'।

यादव सिंह को यह बात ठीक लगी। मकान मालिक ऐसा कर सकता था। उसमें कोई ताज़्जुब भी नहीं था।

उसने कहा, 'आप ठहरे कहाँ हैं ?'

'जी', आंगतुक ने कहा, 'अभी तो कहीं नहीं ठहरा हूँ।'।

'तो आज रात आप यहीं ठहरिये।'।

'अच्छी बात है। आप की इजाजत मिल गई, यह मेरे लिये अं भाग्य है।'।

खाना खाकर जब रात को वे हुक्का पीने बैठे तो खुशबूदार तम्बा

की गंध से कमरा भर गया। उस कमरे में कीमती कालीन बिछा था और महारानी विक्टोरिया के जमाने का भारी फर्नीचर था।

‘आपने,’ यादव सिंह ने कहा, ‘यह कैसे जाना कि उसमें दस्तावेज है।’

‘वह मैं आप को बता सकता हूँ बशर्तें उसे आप अपने तक ही रखें।’

‘जरूर,’ यादव सिंह ने कहा। ‘देखिये कमल सिंह जी!’ यह नाम उसने बातचीत के दौरान में जान लिया था, ‘आप ही देखिये कि मुझे उसे किसी से कहने से फायदा ही क्या होगा।’

‘वह मैंने इसलिये कहा,’ कमल सिंह ने मुस्कराकर कहा, ‘कि आपको रियासत के एक रईस के बारे में कुछ जानकारी होगी। वह जानकारी जिसे शायद वह रईस खुद नहीं जानते थे।’

‘तो वह आप को कैसे मालूम हुई।’

‘इसलिये कि उसका ताल्लुक मेरे एक ऐसे नौकर से है, जो अब बहुत ही बूढ़ा है, मैं कहूँ करीब अठानवे बरस की ही उसकी उम्र होगी। वही पूरी बात जानता है और उसी ने मुझे बताया। उसी ने मुझसे सब कहा, खास तौर पर जब उसने जाना कि मैं कामा जा रहा हूँ। बस तब से ही मुझमें यह कौतूहल हुआ बल्कि लालच ही कहिये। किस्सा अजीब भी है। मगर आपको मैं बता सकता हूँ।’

‘मैं वादा करता हूँ कि आपकी पुरलुफ दास्तान को अपने ही तक रखूँगा,’ यादव सिंह ने कहा।

‘पुरलुफ नहीं,’ कमल सिंह ने कहा-‘बल्कि दिलफ़रेब कहिये, सुनिये’। कमल सिंह ने हल्के से खोंस कर अपना गला जरा साफ किया और कहने के लिये तैयार हो गये। यादव सिंह ने आरामकुर्सी पर लेटे हुए अपने पाँवों पर हल्का दुशाला डाल लिया और उसकी तरफ एक दुशाला बढ़ाया, जो कमल सिंह ने बड़ी तहजीब से लेकर शुक्रिया अदा करके अपने पाँवों पर डाल लिया और वह अपनी कुर्सी पर कुछ झुक कर बैठा।

लैम्प की रोशनी जल रही थी जो पूरे कमरे में फैल रही थी। चार तरफ सजाया था। नौकर नीचे चले गये थे। और खा-पी रहे थे। याद सिंह ने हुक्के में कश लगाया और कहा, 'फर्माइये।'

कमल सिंह ने कहना शुरू किया, 'ऊपर के कमरे में अलावा औ चीजों के एक औरत की तस्वीर रखी है। और यह असल में इस किस् की असली हिरोइन है। उस औरत का नाम चम्पा था। वह दरभंग के एक धनी व्यक्ति की लड़की थी और उसकी शादी करीब के एक रई से तय हुई थी। उस वक्त भी आज ही की तरह लड़कियों की शादी बार एक साल के करीब हो जाया करती थी। वह बहुत खूबसूरत थी। कि वजह से वह रईस मुसलमान हो गये क्योंकि वे एक बार दिल्ली गये और इनके ऊपर उस वक्त के मुगल बादशाह की बहुत मेहरबानी हुई लौटते वक्त वे लखनऊ होकर आये जहाँ से नवाब ने उन्हें खिलकत दी और दौलत भी। उनके मुसलमान हो जाने से उनके उस ब खानदान में से सब मुसलमान हो गये, सिर्फ एक लड़का रह गया जो उ दिनों राजा जयपुर के यहाँ बहुत ऊँचे ओहदे पर नौकर था, जो हो बड़ा नेक और शरीफ भी कहलाता था। उसे जब यह मालूम हुआ। सारा खानदान रुपये के लालच में दीन बदल गया है तब वह भी उन फिरा-फिरा सा रहने लगा। चम्पा के बाप ने भी इसकी परवाह नहीं की चम्पा के दीन बदलने से उसका नाम भी बदल कर शबनम हो गया शबनम की शादी भी उस रईस से छूट गई क्योंकि वह हिन्दू था शबनम कहते हैं इस बात पर रोई भी। लेकिन बेकार था। रोने से बा का अंत कहाँ निकलता है। उससे हमदर्दी जतानेवाला कोई न था शबनम के बाप ने उधर नवाब से 'सरकोब सरकशान' की उपाधि पाई और उनका सिर पहले से भी ऊँचा उठ गया। उसने एक रईस मुसलमान उसकी शादी तय कर दी। वह रईस पहले राजपूत था और सारी राजपू की टेक यही रह गई थी कि उसके खानदान के लोग शादी में खुद न जाते थे। जौनपुर के अल्लामाओं से उन्होंने फतवा ले लिया था।

उनके फेंटे कटार ही से निकाह पढ़ा जा सकता था। चुनौचे शबनम के साथ भी यही हुआ। लेकिन इस घटना के बाद ही शबनम और उसके बाप की तबियत पलट गई और उन्होंने उसे शरीयत के हिसाब से निकाह ही मानने से इन्कार करके कहा, 'शादी हुई नहीं है और हम उससे करना भी नहीं चाहते।' रईस को इस बात से बहुत चोट पहुँची क्योंकि वह सिर्फ अठारह साल पर ही मालिक हो गया था। उन दिनों आजकल की सी बालिग होने की उम्र तो तय थी नहीं। उसने शबनम का हुस्न देखा था और वह आशिक हो गया था। देखिये अब १८८० ई० है। अठानवे साल का तो मेरा नौकर ही है। उससे भी पुराना है यह किस्सा, क्योंकि तब यह सिर्फ सोलह साल का था जब यह किस्सा खत्म हो जाता है। १७५७ ई० में अंगरेजों ने पालसी की लड़ाई जीती थी। और यह किस्सा उससे कुछ ही पहले का है।

जब उस रईस की कुछ नहीं चली तो उसने जौनपुर के अल्लामा को खबर दी। मगर अल्लामा ने बादशाह का रुख देखकर बात की और रईस, जिसका नाम मुअज्जम था, बड़ा निराश हुआ। जब उसे कोई तरकीब नहीं मिली, तो चुप-सा बैठ गया। मगर वह असल में चुप नहीं हुआ। एक रोज शबनम पालकी में कहारों के कंधों पर चढ़ी कहीं जा रही थी कि उसने घेर लिया और अपनी गद्दी में ले गया। वहाँ उसने शबनम को बहुत इज्जत से रखा और उससे आजिजी से कहा कि वह उसे शौहर कुबूल कर ले। लेकिन आप को सुनकर हैरत होगी कि शबनम ने खाई पर रस्सी लटका कर, खिड़की में से नीचे उतर कर, खाई को तैर कर पार किया और भाग गई। सुबह लोगों ने देखा कि रस्सी-नुमा चादरों को बटकर लटकाया गया है। शबनम गायब है, और मुअज्जम के सीने में कटार घुसी थी और वह मुर्दा पड़ा था।

शबनम पर कोई इल्जाम लगाने वाला नहीं था। वारिस नहीं होने से फौरन बादशाह ने उसका दफन करा दिया और मुअज्जम की जायदाद सरकारी करार दे दी गई। जब यह बला टल गई तो पूरे ठाठ के

साथ शबनम की शादी बंगाले के एक बड़े ज़मींदार से कर दी गई जिसका नाम नवाब मखमूर था ।

‘दो साल बाद मखमूर की हत्या की गई और जिस व्यक्ति ने की, वह अब्दुल था, मखमूर का खास मुसाहब । तुरन्त शबनम ने मखमूर को दो नौकरों से मरवा डाला । लेकिन मखमूर का एक खत पकड़ा गया जिसमें यह ज़ाहिर होता था कि वह अब्दुल और शबनम के नाजायज़ ताल्लुक पर शक करता था । अब्दुल के एक खत से यह ज़ाहिर हुआ कि यह कत्ल उसने शबनम के इशारे से किया था, क्योंकि वह उससे प्रेम प्रगट करती थी ।

‘शबनम की जिंदगी में चैन नहीं रहा । वह भागी और लखनऊ जाकर नवाब कुतुब के पौवों पर उसने सिर रखा । कुतुब एक नम्बर ऐयाश था । उसने फौरन उसे पनाह दी । शोहरत यह की गई कि अब्दुल का कत्ल उसने खुद इसलिये करवाया कि वह अपने शौहर को बहुत चाहती थी । उसने अपने ऊपर इल्जाम न आये इसलिये ऐसा किया था, जोकि उसका हक था । यों बात घूम-फिरकर ठंडी हो गई, क्योंकि इन्हीं दिनों ठगो का जोर दरभंगा पर अपना साया डालने लगा । कम्पनी सरकार की ज़ालिमाना हरकतों से जो किसान बे घरबार हो जाते थे, वे इसी तरह लूटमार करके पेट पालते थे ।

‘शबनम का हुस्न कैसा था कि हाथीदाँत उसके सामने काला नज़र आता था । जब वह चाँदनी में खड़ी होती थी, तो ऐसा नज़र आता था जैसे फूटती किरन पर कोहरे की चादर पड़ गई हो । अब वह सोलहवें में चल रही थी । कहर का लहर था । दूटा नवाब कुतुब । उसके हुस्न ने ऐसा जादू किया कि नवाब कुतुब सचमुच उसकी बात को सच समझता । वह उसे बड़ा ईमानदार और शरीफ़ समझता था । अपने ही महल के एक हिस्से में उसने उसे निहायत आराम से रखा । वह हिस्सा बहुत ही कीमती चीज़ों से सजा हुआ था । बल्कि उसे कोठी खास के नाम से पुकारा जाता था । नवाब कुतुब की बेगम को जो दहेज में

बहुत-सा माल मिला था, वह उसी कोठी में था और नवाब से बेगम की इसलिये रंजिश पैदा हो गई कि वहाँ एक दूसरी औरत रहने लगी थी। असल में बेगम को दो रंजिशें थीं। एक यह कि वे उस नयी हसीना के पोंवों की धोवन भी न थीं और दोयम यह कि नवाब उस पर इतना आसक्त था कि अब उसकी चाहत बकौल हर आमोखास इतनी जाहिर हो चुकी थी कि वह उसे छिपाने की भी कोशिश नहीं करता था। उसने चालीस लाख की जायदाद शबनम के नाम लिख दी। शबनम का जयपुर वाला चचा इस सब को जान गया और उसने दर्ज किया कि वही उसका वारिस होगा क्योंकि शबनम की अब शादी नहीं थी और उसका कोई वारिस भी न था। उधर शबनम के बाप की भी बहुत जायदाद थी। क्या मिलेगा, क्या नहीं, वह इसी चक्कर में था कि सारा खेल ही पलट गया। नवाब का अपनी बेगम से झगड़ा हो गया और बेगम घर छोड़कर किसी नदी में डूब गई, बेचारी ! शर्मदार औरत थी। और शबनम को नवाब ने खुलेआम खेल बना लिया। और देखते हो देखते उसने उससे निकाह पढ़वा लिया। जयपुर वाले चचा फिर तामोश हो गये।

‘उन्हीं दिनों शबनम के औलाद हुई और उसने उसे अपने बाद नवाब का वारिस करार दिलवा दिया। जयपुर वाले चचा ने किसी तरह वे कागजात उड़वा लिये जिसमें चालीस लाख की जायदाद की विलकत दी गई थी, पर अब शबनम को परेशानी नहीं थी। उसने इस पर गौर भी न किया। वह समझी कि शायद उसी से खो गये होंगे और उस नौकर पर जरा भी शक न किया जो उसका खास आदमी बनकर रहता था, जो असल में चचा का भेजा हुआ आदमी था और मेरे इसी नौकर का बाबा था।

‘देखते-देखते हुकूमतें पलट गईं’। बंगाल को अंगरेजों ने जीत लिया और शबनम के बाप की जायदाद कंपनी बहादुर ने हथिया ली, मगर शबनम लखनऊ में थी, उस पर कोई चोट नहीं आई। अचानक उसी

वक्त नवाब कुतुब एक रोज मरे पाये गये। उस वक्त कहा गया कि वे बीमार थे लेकिन शबनम ने किसी को उनके पास जाने नहीं दिया कि कोई विरासत का हकदार न बन जाये। सब लोग उस मौत से हैरत में पड़ गये। लेकिन नवाब लखनऊ का एक तो अपने 'सरकोब सरकशम' की मौत का गम था, जो फिरंगियों के हाथों मारे गये थे, दूसरे उन्हें उनकी लड़की पर रहम भी आ गया जब वह अपने उस बेशुमार हुस्न को लेकर उनसे तखलिये में मिली और नवाब ने उसके लड़के को ही वारिस करार दे दिया। नवाब पर उस एकान्त मिलन का इतना प्रभाव पड़ा कि शबनम को उन्होंने अपने पास बुलाकर इसलिये रखा कि वह अपने दोस्त की मौत का गम भुलायें और उनकी बेवा को तकलीफ न होने दें। चुनौचे वह अपना गम भूलते रहे और शबनम का भी गम उन्होंने भुला कर ही छोड़ा। जब गम की बात न रही तो शबनम उसी दबदबे से लौट आई। लड़का रज्जाक गद्दी का मालिक बना और वह उसकी देखभाल के लिये तैयार हो गई।

'मगर हर बात इतनी सहूलियत से नहीं हो जाती। नवाब कुतुब का एक दूर का रिश्तेदार था जो अपने को हकदार समझता था। वह हक मँगने आया और अपनी फौज चढ़ा लाया। शबनम ने सब को बेदर्री से कत्ल करा दिया। वह दौड़कर बड़े नवाब के पास गया। नवाब चक्कर में फँस गये। वह उनका साला लगता था। उन्होंने उसे दिल्ली भेज दिया और बादशाह से वह हुक्मनामा ले आया। धड़ल्ले से फौज इकट्ठी की। नवाब ऐसे बन गये जैसे जानते नहीं थे। उसने इस बीच में शबनम की फौज को काट डाला और उसे महल के दूसरे हिस्से में कैद कर दिया। लेकिन वह भाग निकली और दूसरी राह पकड़ कर कानपुर चली गई जहाँ से वह ब्रह्मावर्त बिठूर पहुँची। वहाँ वह कुछ रोज रही। पता नहीं अब उसका खर्चा कैसे चलता था। लेकिन कुछ दिन बाद ही उसके पास पैसा आ गया। उसने अपनी एक तस्वीर वहाँ के किसी रईस के ऐयाश बेटे के पास भेज दी

और जो कुटनी ले गई वह खूब मालामाल हो गई। कुछ ही दिन बाद वह रईस का बेटा आने लगा और रजाक को धाये रखती, शबनम मौज उड़ाती। यहाँ शबनम को उसके नौकर के सिवाय कोई जानता भी न था। नौकर अभी तक अपने असली मालिक के हुक्म से उसके साथ लगा हुआ था। रईस का बेटा मुश्ताक नाम से जाना जाता था। वह एक दिन लखनऊ में कुतुब के भाई नवाब का कत्ल करते पकड़ा गया और वहीं उसके नौकरों ने उसे हर तरह से पूछा कि तू कौन है, क्यों आया है। मगर जब कुछ पता नहीं चला तो उन्होंने उसे नवाब के सामने पेश किया। नवाब उस दिन बहुत ज्यादा अफीम खा गये थे, उन्होंने गलती से न्यायाधीश के पास ले जाने का हुक्म देने के बजाय यह कह दिया कि इसे काट डालो। और वह यों बराबर हो गया।

‘शबनम इन्हीं दिनों एक मालदार जाट सर्दार को फँसा धैठी। रजाक हैजे से मर चुका था। तब वह सब कागजात लेकर उसके साथ आ गई और इसी मकान में रहने लगी। काफी उम्र तक वह जिंदा रही। लेकिन उसकी कोई आलाद नहीं हुई। यहाँ आकर उसने फिर हिंदू ढंग से जाट सर्दार के साथ रहना शुरू कर दिया और जयपुर वाले चचा का नौकर यहाँ भी उसके साथ आया। १७८० ई० में जाट सर्दार मर गये और तब से वह उस नौकर के साथ रही और चालीस बरस बाद १८२० ई० में मर गई। तब इस मकान मालिक का बाप उसका जवान महाराज था। उस से उसका कुछ ताल्लुक हो गया। लेकिन उसके पास पैसा नहीं था। एक दिन वह सो रही थी कि कुछ चोर उसे कत्ल कर गये। जयपुर वाले चचा का नौकर उसकी लाश को लेकर चुपचाप जला आया। महाराज ने पूछा तो उसने कहा कि वह नहीं जानता कि वह कहाँ गई, क्योंकि उसके सारे कीमती जेवरात वह उड़ा चुका था। जेवरात उसने जयपुर वाले चचा को उनके बुढ़ापे में दे दिये और खुद मर गया और अपने बेटे को हिदायत कर गया कि वह अब दरभंगा लौट जाये जहाँ का वह रहने वाला था। नौकर का

बेटा लौट गया और उसने अपने बेटे यानी उस बूढ़े को सारा किस्सा सुना दिया। जयपुर वाले चचा भी आखिर दरभंगा लौट गये। मैं उनका नाती हूँ और वह बूढ़ा अभी मेरे यहाँ है। आप का मकान मालिक उसी महाराज का बेटा है। आप इसकी क्या उम्र समझते हैं ?

कमल सिंह का बयान सवाल के साथ खत्म हुआ।

यादव सिंह ने कहा, 'यही साठ का होगा।'

'जी नहीं', कमल सिंह ने कहा, 'यह करीब सत्तर-बहत्तर का है और असली राज को यों छिपा गया है,' 'यो'... .. कह कर कमल सिंह ने चुटकी बजाई और कहा, 'वह दस्तावेज मेरे पास अब भी दरभंगा में है। मैं तो कुछ जानता न था, पर उस नौकर ने मुझे बताया। बाबा साहब के जमाने में मुगल सल्तनत उजड़ी तो वे डर कर चुप हो रहे। वालिद साहब अब काफी जर्दीफ होकर गुजर गये हैं, भगवान उनकी आत्मा को स्वर्ग में स्थान दे, मैंने सोचा कि हो सके तो चालीस लाख की जायदाद के लिये सरकारेशाला से मुकदमाबाजी करूँ। मिल जाय तो भला ही है।' कमल सिंह हँसा। उसने फिर कहा, 'आप के उस कमरे में शबनम का सामान ज्यों का त्यों रखा है, ऐसा नौकर कहता था।'

'अच्छी बात है', यादव सिंह ने कहा, 'कल देखा जायगा। मगर बड़ी कातिल औरत का किस्सा सुनाया है आपने।'

'वह औरत !' कमल सिंह ने कहा, 'दो चीजें चाहती थी दौलत और ऐयाशी। मरते वक्त भी कहते हैं उसने सिंगार किया था। अस्सी साल के करीब मरी थी, लेकिन उस नौकर से कहती थी, मैं अभी तक जवान हूँ बेवकूफ ! मरने के बाद मैं फिर जवान हो जाऊँगी। और बड़े खतरनाक ढंग से हँसती थी कि उस नौकर के रोंगटे खड़े हो जाते थे।'

उस बात को सुन कर अचानक यादव सिंह के शरीर में एक कंपन सा छा गया। वह समझ नहीं सका। कमल सिंह ने फिर कहा, 'कोई मेरी जायदाद, मेरे धन पर हाथ नहीं रख सकेगा। और जो भी मेरी

दौलत को किसी को देगा, मैं उसे कत्ल कर दूँगी। वह कहती थी, जिसने मुझे प्यार किया है मैंने उसे मारा है। क्यों ? मैं नहीं जानती। जो मुझ पर जान देता है उसे तड़पाने में मुझे मजा आता है। जो मेरी परवाह नहीं करता, उससे मैं नफरत करती हूँ। उसकी तरफ देखना भी नहीं चाहती। लेकिन जो मेरे हुस्न से मेरी तरफ खिंचता है उसे मैं कभी भी जीता नहीं छोड़ूँगी। क्योंकि वह भेड़िया है। जो मुझे फाड़ कर खा जाना चाहता है, और तब भयानकता से हँसती थी !

‘अजीब औरत थी !’ यादव सिंह ने कहा, ‘अजीब खयाल थे उसके।’

रात गहरी हो गई थी। कमल सिंह उठ खड़ा हुआ।

उसने कहा, ‘अब सोने की इजाजत हो’

‘ओह हाँ,’ यादव सिंह ने चौंक कर कहा, ‘यह तो मैं भूल ही गया !’ अब वह भी उठ खड़ा हुआ और उसने अँगड़ाई लेकर कहा, ‘सच क्या वह बहुत खूबसूरत थी !’

‘भाई मैंने तो उसे देखा नहीं। मेरा नौकर ही कहता था कि अपने महाराज को आकर्षित करने के बाद उसी ने धीरे-धीरे असर करने वाला जहर देकर जाट सदाँर को भी मार डाला था। वह तो शायद महाराज को भी मार देती पर अचानक कत्ल कर दी गई। लेकिन बड़े नवाब की मौत लखनऊ में छत से गिर कर हुई और इसका बाप कैसे मरा मैं नहीं जानता। कल पूछेंगे उससे। उस औरत ने तो शायद मरने के बाद भी अपना कौल पूरा किया।’

‘लेकिन,’ यादव सिंह ने कहा, ‘आप तो उसकी दौलत की कोशिश कर रहे हैं।’

‘दस्तावेज है साहब ! जब मिल जाये तब देखा जायगा। ज्यादा से ज्यादा माल ही तो देगी। लेकिन मुझे उससे नफरत है। वह मुझसे क्या कहेगी। जो उससे प्रभावित होगा वही मरेगा।’

‘आप इन बातों को मानते हैं !’

‘मानने न मानने की गुंजायश ही क्या है साहब,’ कमल सिंह ने

कहा, 'आप ही देखिये न ? उसने मुअज़्जम को कटार मार कर मार डाला और खाई' के रास्ते भाग निकली । उसके बाद उसने मखमूर को अब्दुल से कत्ल करवाया और फिर अब्दुल के टुकड़े करवा दिये । फिर नवाब कुतुब के यहाँ जाकर रही और उसकी बेगम को तबाह कर डाला । नवाब कुतुब को भी उसी ने मरवाया क्योंकि उसके लड़का रज्ज़ाक हो चुका था । फिर नवाब कुतुब के हकदार रिश्तेदार ने जब उसे निकाला और बड़े नवाब ने मदद न की तो उसने ब्रह्मावर्तबिठूर के मुश्ताक से कुतुब के भाई का कत्ल करवा दिया और वही मुश्ताक भी मारा गया । फिर उसने जाट सदाँर को मारा । उसके बाद कैसे भी कहिये बड़े नवाब लखनऊ में छत से गिर कर मरे ! आप कहें शायद यह आकस्मिक मृत्यु थी । जाने दीजिये । बस उसका आखिरी पार इस मकान मालिक का बाप था, उसका महाराज । उसकी मौत के बारे में सुबह दरयाफ्त किया जायगा ।'

यादव सिंह सोचता रहा । उसने कहा, 'मुअज़्जम एक, मखमूर दो, अब्दुल तीन, नवाब कुतुब की बेगम चार, नवाब कुतुब पाँच, नवाब का हकदार रिश्तेदार भाई छ, मुश्ताक सात, जाट सदाँर आठ, और मरने के बाद बड़ा नवाब नौ, और दसवें की बात रह गई । उफ ! कैसी गजब की औरत होगी !! दस खून और फिर भी वह अपने को पाक मानती थी । आपके नौकर को नहीं मारा उसने, कि उसने दस्तावेज़ चुराये थे !!'

'वह उसे मानती थी क्योंकि वह उसके उस राज को भी छिपाता था कि वह मुसलमान से हिंदू हुई थी ।'

'और अपने उन पूर्वज की कैसे कुशल रही कि दस्तावेज़ रखे रहे ?? उसने कुछ न किया ??'

'रखे ही तो रहे,' कमल ने हँस कर कहा, 'आप तो समझ रहे हैं कि वह सचमुच अब भी बदला ले सकती है ।'

'जरूर ले सकती है साहब,' यादव सिंह ने हँस कर कहा, 'जरा सोचिये तो । कितनी बला की खूबसूरती होगी उसकी ! दस आदमों ।

और हर उम्र के।' यादव सिंह ने आँखें फाड़ कर कहा, 'मैं तो चित्रों का आलोचक हूँ। मैंने संसार के महान् चित्रकारों के चित्र देखे हैं। लेकिन ऐसी किसी सुन्दरता को मैंने नहीं देखा जिसमें इतनी शक्ति हो।'

यादव सिंह के स्वर में ऐसा प्रभाव था, जैसे वह उस सुन्दरता से आतंकित हो गया था। उस पर जैसे उसकी छलना अपने पंख फैलाने लगी थी।

कमला सिंह ने कहा, 'अच्छा तो मैं चलूँ?'

'हाँ! हाँ आप सोइये,' यादव सिंह ने कहा और अपने पलंग पर जाकर लेट गया।

कब उसे नींद आई, उसे ध्यान नहीं लेकिन जब वह उठा तब नौकर सामने चाय लिये खड़ा था।

दूसरे दिन सुबह का पहला काम यह हुआ कि मकान मालिक को बुलवाया गया। कमल सिंह ने कहा, 'आपके कं यहाँ कोई हिस्सा किराये के लिये और भी खाली है!'

'जी नहीं,' उसने कहा।

'क्यों? ऊपर के कमरे हैं तो?'

वह कुछ घबराया। कहा, 'वह तो आज तक कभी भी किराये पर नहीं उठाये गये।'

'क्यों?' कमल सिंह ने मुस्करा कर कहा, 'आप संसार का भविष्य बताने वाले ज्योतिषी को ही चकमा दे रहे हैं!'

यादव सिंह मुस्कराया।

'मैं नहीं समझता,' मकान मालिक ने कहा।

'आप क्यों समझेंगे साहब। जायदाद वाले हैं। आप तो राजासाहब को पाकर निहाल हैं, मगर हम जैसे गरीबों पर भी कभी नजर डालियेगा या नहीं?'

'जी सरकार,' मालिक ने काट्य लेकिन कमल सिंह ने उसे बोलने नहीं दिया। वह कहने लगा, 'पहले आपके वालिद साहब थे न.....?'

वह रुका और उसने धीरे से कहा, 'जब जाट सर्दार साहब यह रहते थे आपके वालिद को यह जायदाद मिली थी।'

'भूँठ है !' मालिक गुरीता हुआ खड़ा हो गया।

'भूँठ है,' कमल सिंह ने हँस कर कहा, 'कोई नौकर यहाँ हैं नहीं।' कुँवर साहब हैं और मैं हूँ आप डरते क्यों हैं? जायदाद आपकी है, आपकी ही रहेगी, मैं किसी को इसकी खबर नहीं दूँगा। लेकिन यह न समझिये कि मैं कुछ जानता नहीं। शबनम बीबी जब अजमत कौर बन कर इसी हवेली में रही थी।'

वाक्य पूरा नहीं हुआ। मालिक कॉप गया और आँखें फाड़ कर देखने लगा। कमल सिंह सतर्कता से देख रहा था। उसने फिर कहा, 'आप बेकार घबरा रहे हैं जनाब। आप सोच रहे होंगे कि मैं यह सब कैसे जानता हूँ, और वह बातें जिन्हें खास भरतपुर के लोग भूल गये हैं। किस्सा असल में यह है कि मैंने मिसर के नजूमी से जो इल्म सीखा है उसके ज़रिये मैं पुरानी रूढ़ि से बातचीत कर लेता हूँ। यहाँ ठहरा तो मुझे यहाँ एक औरत की रूढ़ मिली। उसने बताया कि उसके कुछ कागजात ऊपर के कमरे में बंद हैं। हैं न?'

मालिक को पसीना आ गया। उसने कहा, 'हैं तो।'

'तो उन्हें मुझे दे दीजिये और फिर अपने पूज्य पिताजी को भी बंधन से छुड़ाइये। जिस दंग से उनकी मौत हुई थी वह तो आप को याद होगा?' और उसने मुड़कर कहा, 'लीजिये कुँवर साहब! आप मेरे इल्म का इम्तहान लेना चाहते थे न? पूछ लीजिये इनसे कान में। देखिये वही बात निकलती है या नहीं जो मैंने बताई है।' उसने फिर मकान मालिक से कहा, 'लीजिये साहब बता दीजिये। आज ही कुँवर साहब मेरे शागिर्द हुए जाते हैं।'

मकान मालिक ने झुक कर यादव सिंह के कान में कुछ कहा जिसको सुन कर उसका चेहरा फक हो गया और कमल सिंह खिलखिला कर हँसा। बोला, 'कहिये?'

‘आप ठीक कहते थे,’ यादव सिंह ने कहा, ‘वे हौज़ में नहाते हुए डूब कर मर गये थे।’

यादव सिंह को ऐसा लगा जैसे दसवाँ खून उसके सामने ही हो गया था। वृद्ध कमल सिंह की ओर आश्चर्य से देखता रहा।

यादव सिंह ने कहा, ‘अच्छा साहब सुनिये। अब यह आपका मकान मैं छोड़ दूँगा।’

‘क्यों हुज़ूर !’ उसने दयनीय स्वर से पूछा।

‘आप नहीं जानते, आप नहीं जानते,’ कहते हुए यादव सिंह उठकर कमरे में घूमने लगा।

वह भौंचका रह गया।

कमल सिंह ने कहा, ‘नहीं कुँवर साहब ! आप घबराते क्यों हैं ? मैं सब भ्रंश दूर किये देता हूँ। वह रहेगी तभी न यहाँ डर है ? चलिये उसके निशानात को हटवा दें, सब ठीक हो जायगा।’ उसने मकान-मालिक से कहा, ‘जाइये चाभी ले आइये।’

मकान मालिक चुपचाप चाभी का गुच्छा ले आया। कमल सिंह ने बढ़ते हुए कहा, ‘कुँवर साहब ज़रा तकलीफ कीजियेगा ?’ और मकान मालिक हालाँकि ऊपर जाने को लालायित न था कमल सिंह ने कहा, ‘आप कहाँ सरक रहे हैं चुपचाप ! रुह. क्या आपको पकड़ लेगी ? चलिये आप भी !’

इस बेवजह की मगर लापरवाह डाँट से वह तो दिल ही दिल ऐसा दबा कि उसने कहा, ‘जी हाँ सरकार ! मैं तो हुज़ूर के साथ ही हूँ।’

ऊपर का कमरा खोला गया। कमरे से बदबूदार हवा निकली। न जाने कब का बंद था। जब बू कम हो गई और नई हवा ने भीतर प्रवेश किया तब कमल सिंह ने मकान मालिक से कहा, ‘चलिये।’

‘जी हाँ !’ वह कुछ रुक कर बोला।

‘जी हाँ क्या ? मालिक मकान आप हैं।’

‘हुज़ूर ही मालिक हैं,’ उसने और पीछे हट कर कहा, ‘मैं बुढ़ा

आदमी हूँ। आप जानकार हैं। आप की ही वजह से मेरी भी हिम्मत बँधी हुई है।’

चुनांचे कमल सिंह और यादव सिंह के पीछे बुढ़ा भी घुसा। वहाँ कोई खास चीज़ नहीं थी। कुछ पुराने कपड़े थे। एक बड़ा-सा कलमदान था। यादव सिंह ने उसे देखा और हाथ फिराया। एक मैली और एक काली सी चीज़ थी वह। अचानक उसका हाथ एक कब्जे पर पड़ा तो ऊपर का ढक्कन खुल गया। कलमदान पर नज़र नहीं ठहर सकी। तीनों ने देखा कि उसमें वेशकीमती नग जड़े हुए थे।

कमल सिंह ने कहा, ‘और तलाश कीजिये।’

दराज़ खोलते ही उसमें से कागज़ों का एक पुलिंदा निकला। कमल सिंह ने कहा, ‘और देखिये।’

निचला पलड़ा अपने आप हाथ लगने से भूल-सा गया और उसमें से एक तस्वीर, हाथ की बनी, नीचे गिरी। यादव सिंह ने उसे उठा लिया। उसके नीचे फ़ारसी में लिखा था ‘शबनम !’

‘शबनम !’ यादव सिंह ने धीरे से कहा।

वृद्ध ने देखा। पर अब उसकी आँखें धुँधली सी हो गई थीं। उसने खुद शबनम को देखा ही कब था। उसकी नज़र तो इस समय कलमदान पर लगी हुई थी।

कमल सिंह समझ गया। उसने कागज़ अपने हाथ में उठा लिये और तस्वीर हाथ में लिये बैठे हुए यादव सिंह से कहा, ‘चालिये कुँवर साहब। इन कागज़ों को जला देने से यह रूह नहीं रहेगा। कलमदान मालिक को दे दीजिये।’

‘हैं हैं सरकार,’ उसने लालच से भेंगी-भेंपी हँसी हँस कर कहा, ‘यह भी सब आप ही का है...’

दूसरे दिन कमल सिंह चला गया। यादव सिंह सोचता कि शबनम का कलमदान अगर इस बुढ़े ने लिया है तो यह कैसे बच सकता है। उसकी तबियत आती कि वह कमल सिंह को ख़त लिखे, पूछे, तभी कमल

सिंह का खत आया कि कागजात मिल गये हैं। वकीलों को दे दिये गये हैं। लेकिन जायदाद बड़ी है। काफी टिकट लगेंगे लिहाजा तजबीज में हूँ। आयादा का हाल फिर लिखूँगा। आपने जो मदद की है, वह हमेशा याद रहेगी। आपकी भाभी याद करती हैं। कहती हैं आप भी शादी करके घर बसा लें। मेरी बच्ची अच्छी है।

फिर पन्द्रह दिन बाद खत आया, वालिद साहब गुजर गये हैं।

उसी दिन पता चला कि मकान मालिक ने एक अँगरेज के हाथों आगरे ले जाकर वह कलमदान बेच दिया। रुपया कितना मिला यह तो पता नहीं चला लेकिन उससे भी पहले जो पता चला वह यह था कि मकान मालिक रास्ते में पेट के दर्द से मर गया।

न जाने क्यों यादव सिंह को बुखार-सा चढ़ आया और नौकर भी घबरा गये क्योंकि पन्द्रह दिन तक वह बेहोश रहा। भरतपुर में तहलका मच गया। राज की नजर घर पर पड़ी। वारिस न होने की वजह से यह मकान फौरन सरकार में दाखिल कर लिया गया। आगरे की रेजीडेन्सी से तन्दुरुस्ती दरयाफ्त की गई। राजा साहब आगरे के बड़े अँगरेज डाक्टर को लेकर आ गये। दिल्ली तक खबर खैरियत के पत्र गये। लेकिन जब दो महीने बाद वह ठीक हुआ यादव सिंह एक दूसरा ही आदमी था, जिसे तस्वीर बनाने की धुन सवार हो गई थी। शादी के नाम पर चिढ़ता था।

राजा साहब को लौट जाना पड़ा और भीड़-भाड़ कम हो गई।

यादव सिंह दिन रात स्केच बनाता और घंटों शबनम की तस्वीर देखा करता। वह देख-देखकर मुस्कराया करता। वह देखता और देखता, बार-बार उसे देखता। उसकी प्यास ही नहीं बुझती। बार-बार उसे ख्याल आता। शायद पहली शादी के छूटने से शबनम में यह अमानुषिक प्रतिहिंसा जाग उठी थी।

भरतपुर में अब कुछ नहीं था। सरकारी काम उसने छोड़ दिया। अब ? घर लौटने में लुत्फ नहीं था।

आखिर उसने सामान बँधवाया और निकल पड़ा। आगरे जाकर कुछ दिन रहा, लेकिन उसे वहाँ की सदर छावनी अच्छी नहीं लगी।

भरतपुर से निकलने के बाद उसका स्वास्थ्य अब अच्छा होने लगा था। इकलौता बेठा था, मगर कोई क्या करता। वह तो तस्वीरें बनाने की ही धुन में था। और उसी काम में उसे ऐसी लगन लगी थी कि दूसरी बात न करता था। यों कुँवर यादव सिंह ने स्टूडियो खोल लिया तो वह बम्बई में रहने लगा। यहाँ वह समुद्र के निकट आकर अधिक चैन पाने लगा। कहीं वह सरकारी काम। कहीं यह चित्रकार का जीवन ! लेकिन धन तो घर से आता ही था। चिन्ता किसी बात की थी नहीं।

एक दिन एक आदमी आया। यादव सिंह ने उसे बिठाया।

‘आपने कैसे कष्ट किया ?’ यादव सिंह ने पूछा।

‘मैं अपना परिचय आप को दूँ। अब की बार मैं दरभंगा गया था।’

‘अच्छा। वहाँ आप कमल सिंह से मिले होंगे।’

‘जी हाँ वे आपकी बहुत तारीफ करते थे।’

यादव सिंह ने कहा, ‘अच्छे आदमी हैं ? उनका एक जायदाद का मामला था।’

‘जी हाँ वे बताते थे कि भरतपुर में आप ने उनकी काफी मदद की थी।’

यादव सिंह रहस्यमय तरीके से मुस्कराया।

‘आपका शुभ नाम ?’ उसने पूछा।

‘मुझे गोविन्द राव सरवटे कहते हैं।’

‘आप मराठा हैं।’

‘जी हाँ, मैं यहीं रहता हूँ बम्बई के पास।’

और उसने अपना पता बताया।

‘मुझसे कमल सिंह ने कहा था’, सरवटे ने बताया, ‘कि आपसे जरूर

मिलूँ । मुझे उन्हीं ने आपका पता बताया था । आपकी तो उनसे खतो-किताबत चलती रहती है ?

‘जी हाँ । लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि उन्होंने सरकार में अपनी जायदाद के लिये अर्जी दे दी या नहीं ?’

‘हाँ,’ सरवटे ने कहा, ‘वे अब नहीं देंगे ।’

‘क्यों ?’

‘जिस दिन वे अर्जी देना चाहते थे, उसी दिन उनकी छोटी बच्ची छत से लुढ़क गई और नहीं रही ।’

यादव सिंह को झटका-सा लगा । वह जैसे स्तब्ध हो गया था । कुछ देर बाद उसके मुँह से फूट निकला, ‘नहीं, नहीं, यह तो उसने अच्छा नहीं किया । बदला लेना था तो कमल सिंह से लेना चाहिये था । उस अनबूझ बच्ची ने क्या किया था ।’

‘मैं आपकी बात समझा नहीं,’ सरवटे ने कहा,—‘आपका मतलब किससे है !’

‘वह आपको मैं कभी फुरसत से बताऊँगा,’ यादव सिंह ने सोचते हुए कहा । वह जैसे ध्यान में डूब गया था ।

सरवटे देखता रहा ।

यादव सिंह ने चौंकर कहा, ‘आपको कुछ चित्रकला में शौक है ?’

‘मुझे तो इतना नहीं,’ सरवटे ने कहा, ‘लेकिन मेरी पत्नी को बहुत ज्यादा दिलचस्पी है ।’

‘वे आपके साथ हैं ?’

‘नहीं । वे तो घर हैं ।’

‘वे तस्वीरें बनाती हैं ?’

‘शादी के पहले बनाती थीं ।’

‘बाद में क्यों छोड़ दिया ।’

‘ऐसे ही ।’

यह बात यादव सिंह को जँची नहीं। बोला, 'आप पहले क्या किसी और काम में थे ?'

'जी मैं कुछ दिन सेना में रहा हूँ। मेरे यहाँ सभी फौजी परम्परा में रहे हुए लोग हैं। कभी आप हमारे यहाँ आयें तो बहुत खुशी होगी। कमल सिंह मेरा दोस्त है ! उसने आपकी बहुत तारीफ भी की थी। जब आपने उसकी इतनी मदद की तो हमारा फर्ज है कि आपकी तबियत यहाँ लगी रहे, इसकी कोशिश करें।'।'

'आप क्यों तकल्लुफ करते हैं। मैं अगले इतवार को आपके यहाँ जरूर आऊँगा।'।'

'आइए। मेरी पत्नी का चित्र बनाइए। हम लोग कमल से घर की तरह घुले-मिले हैं। अब हम अपना वही फर्ज आप से निभायेंगे।'।'

'यह आप की मेहरबानी है,' यादव सिंह ने कहा, 'भरतपुर में मेरी तन्दुरुस्ती कुछ खराब होने लगी थी।'।'

'यहाँ तो ठीक है ?'

'जी हाँ। पहले से ठीक है।'।'

'मैं पूछ सकता हूँ आपको क्या परेशानी है ?'

'जी वैसे तो कोई नहीं। लेकिन वहाँ मेरी तबियत नहीं लगती थी। बम्बई जरा बड़ा शहर है। यहाँ तरह-तरह के लोग हैं। आइये, आप जाने के पहले मेरी तस्वीरें तो देख लीजिये।'।'

'चलिये।'।'

भीतर के कमरे में लेजाकर सरवटे को बिठा कर यादव सिंह अपना अल्बम उठा लाया।

'देखिये,' यादव सिंह ने कहा, 'ठहरिये मैं दिखाता हूँ।'।'

यादव सिंह अपने चित्र दिखाने लगा।

'लेकिन !' सरवटे ने कहा, 'यह...'

'आप इन चित्रों के बारे में कह रहे हैं ...'

'मेरा मतलब था कि यह सब...'

‘जी हाँ, आपका खयाल ठीक है।’

सरवटे ने ऊपर सर उठाकर देखा। उसकी आँखों में कौतूहल था।

यादव सिंह ने कहा, ‘यह सब मेरे ही बनाये हुए हैं। आपको यह सुन कर शायद आश्चर्य हो कि मैंने किसी से चित्र बनाना सीखा नहीं है। अपने आप बनाता हूँ। न जाने कैसे मुझ में यह शक्ति जाग्रत हो गई!’

यादव सिंह ने अपने सिर पर हाथ फेरा और मुस्कराया। उसकी आँखों में एक चमक-सी थी। वह कितनी देर तक देखता रहा इसका उसे स्वयं अनुमान नहीं हुआ। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसके मुख पर आँखें जमी हुई हैं! परन्तु फिर वह जैसे जाग उठा।

‘यह उसी स्त्री का चित्र है,’ यादव सिंह ने कहा, ‘उसी का तो यह चित्र है। आप इसे पहचान सकते हैं? कितनी अजीब है? है कि नहीं? अद्भुत प्राणी है यह, मैं इससे स्वयं मिला था। कितनी सुन्दर है। भव्य! परम सुन्दरी। और ऐसा लगता था जैसे रूप का निर्भर मेरे सामने था। और आलोक की जैसे समस्त किरणें केन्द्रित होकर मेरे सामने आ गई थीं। आप देखते हैं? मैं पहले कला का आलोचक था। अब मैं स्वयं चित्रकार बन गया हूँ।’ यह कहते हुए यादव सिंह एक बार हँसा। उस हास्य में बड़ी तृप्ति थी और हृदय की वह गहरी अनुभूति थी जो कि सबसे अधिक इस बात को प्रगट करती थी कि भीतर-बाहर केवल एक ही की उसमें उस समय अभिव्यक्ति स्पष्ट हो रही थी। ‘यह सब,’ उसने फिर कहा, ‘उसी के चित्र हैं। देखिये वह पानदान के सामने बैठी है। यह देखिये वह फूल सूँघ रही है। वह देखिये वह झूला झूल रही है। सब...सब उसी के चित्र हैं। उसके सिवाय कुछ नहीं है। लेकिन उसका नाम नहीं बता कर यह मैं आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप इसे पहचानें। उसके गाल देखिये। जब मैं इसमें रंग भरूँगा तब आप देखेंगे कि उसके गाल में गड्ढा पड़ता है, छोटा सा, प्यारा-प्यारा। ऐसा लगता है, ऐसा लगता है,’ यादव सिंह ने सोचते हुए कहा, ‘जब

सवेग नदी बहती है तब बाढ़ में आपने देखा है अपने वेग से ही जरा सी गहराई पाकर पानी में भँवर पड़ता है ! यही हालत उसके गाल की भी है । रूप की बाढ़ में बहता हुआ यौवन आकर यहाँ दूसरों की नज़र के दबाव से ज़रा सी रुकावट पाकर एक दम जैसे भँवर मार रहा है । मुझे ऐसा लगता है ।’ यादव सिंह फिर हँसा और बोला, ‘आप बताइये, कोई भँवर पार कर सका है ? कोई नहीं ।’

हास्य फिर बिखरा ।

सरवटे गंभीरता से कुछ सोच रहा था ।

शाम होती आ रही थी । उसने अत्यंत नम्रता से उठते हुए कहा, ‘तो फिर मुझे आज्ञा है ?’

‘कैसे कहूँ ?’ यादव सिंह ने उठते हुए कहा ।

सरवटे ने याद दिलाया, ‘आप को अपना वादा याद है न ?’

‘कैसा वादा ! ओह हाँ । इतवार को, ज़रूर !’ यादव सिंह ने मुस्करा कर कहा ।

सरवटे हाथ मिला कर चला गया ।

इतवार आने में देर नहीं लगी । शीघ्र ही यादव सिंह तैयार हो गया । जब वह रेल में बैठा तो उसे विचार आया । क्या वह सरवटे की स्त्री का चित्र बनायेगा ?

नहीं । कभी नहीं ।

वह एक साधारण स्त्री होगी ।

और शबनम के चित्र के बाद यदि वह उस साधारण स्त्री का चित्र बनायेगा तो क्या वह शबनम का अपमान नहीं होगा । इस विचार के आते ही उसकी इच्छा हुई कि वहीं से लौट जाये ।

शबनम बुरा मानेगी ।

शबनम !!

वह है कहाँ ?

वह तो कभी की मर गई !

मर गई ?

नहीं ।

रूप कभी मरा है ?

कभी नहीं ।

फिर ?

क्या होगा सरवटे के यहाँ ?

वही रोज़मर्रा का खाना-पीना । बाल-बच्चे होंगे । कोलाहल । नौकर-चाकरों का कानून से काम करना । चारों ओर एक हृदयहीनता !

श्रीमती सरवटे ! गिरस्तन औरत होगी और क्या ? वह अपने परिवार की चिन्ता में मग्न रहेगी । उसे क्या चित्रित करेगा वह !

शबनम !

अनिंद्य सौंदर्य !

विश्व में हलचल मचाने वाला रूप । वह तो वक्त ऐसा था कि वह ऊपर उभर न सकी वरना मेहरुनिसा ही क्या थी जो नूरजहाँ बन कर आज तक पुज रही है ! रेगिस्तान में पैदा हुई थी, और बाद में बौंदी बन कर रही । और जब वक्त आया तो मलका मुअज़मा बन गई !

यादव सिंह को इस बात से इतिहास के प्रति क्रोध हुआ । उसने क्या नूरजहाँ की तस्वीर देखी नहीं । मगर उसमें वह बात कहाँ ? फिर भी उसका नाम है ! क्यों ? क्योंकि बादशाह ने उसको अपना लिया था । बस वही काफी हो गया और वही हर जगह मुनाई देने लगी ।

होती उस वक्त शबनम तो देखते ।

हिल जाता मुगले आला का तख्त । चलती तो होशियार ! खबर-दार !! कह कर हवा पुकारने लगती ।

और यह विचार आया कि यादव सिंह अत्यंत संतुष्ट हुआ । मुगल ही ऐसे क्या थे ! हुकूमत और चीज़ है, हुसैन अलग चीज़ है । तुलसी देवता पर चढ़ती है, मगर खूबसूरत नहीं होती । लेकिन सुबह की ओस

जिसमें हीरा चमकता है, उसे कोई पकड़ सकता है ? इन्द्रधनुष पर किसी ने आज तक तीर चढ़ाया है ?

तब वह जाये या लौट जाये ।

लेकिन जाने में क्या हर्ज है !

और वह इसी उधेड़बुन में रहा कि रेल ठिकाने पहुँच गई । उसे उतरना पड़ा ।

पानी तेजी से बरस रहा था । जब वह वहाँ पहुँचा वह भींग सा गया था । तुरन्त सरवटे बाहर आया और सबसे पहले उसने कपड़े बदलने को कहा ।

कमरे में अंगीठी रखी थी । यादव सिंह ने देखा कि पहाड़ी स्थान होने के कारण वह जगह ठंडी थी, दोनों आग के पास बैठ गये ।

यादव सिंह को आश्चर्य हुआ । सरवटे समझ गया था । उसने कहा, 'यह पुराना किला है और हमही यहाँ पूर्वजों के वैभव को भोग रहे हैं । सामने का यह घना जंगल भी मेरी ही संपत्ति है । वह तालाब जो हाते में आपने देखा था मेरा है । यह किला बहुत पुराना है । शिवाजी ने इसे जीता था और यहाँ वे दो दिन रहे भी थे । उसके पहले हम लोग यहाँ नहीं थे । बाद में मेरे पूर्वजों को इस किले के आस-पास का इलाका और यह किला मिल गया जो सब आज तक मेरे पास है ।'

यादव सिंह ने देखा । दीवारों पर तरह-तरह के हथियार लटक रहे थे । यादव सिंह ने सरवटे की ओर देखा तो उसने मुस्करा कर कहा, 'नहीं शिकार छोड़े अरसा गुजर गया । अरे हाँ,' वह चौंका—'मुघा शायद सो रही है ।'

'आप किसका जिक्र कर रहे हैं ?'

'मेरी पत्नी की, बात कर रहा हूँ,' सरवटे ने कहा ।

'तबियत तो ठीक है न ?'

'हाँ हाँ, सो तो ठीक है,' उसने सोचते हुए कहा, 'वैसे तो उन्हें कुछ न कुछ लगा ही रहता है । डाक्टरों की राय है कि उन्हें आराम की

ज़रूरत है, फ़िक्र नहीं करनी चाहिये। और वे हैं कि ज़रा-ज़रा सी बात में घबरा जाती हैं।’

‘होता ही है,’ यादव सिंह ने कहा।

नौकर चाय ले आया।

‘आप चाय पीजिये,’ सरवटे ने कहा, ‘आप को गर्माई का ज़रूरत है।’

‘आप तो बेहद तकल्लुफ़ कर रहे हैं।’

‘क्यों आपका ख़याल है मैं आपको अकेले पी लेने दूँगा?’

दोनों हँसे।

चाय खत्म हुई। दोनों के बीच में रखे प्याले वगैरह को नौकर उठा ले गया। कमरे में कुछ देर नीरवता छाई रही।

सरवटे तन्दुरुस्त आदमी था, लेकिन इस समय उसके चेहरे पर एक परेशानी सी नज़र आती थी, जो किसी कमज़ोर आदमी के मुँह पर दिखाई देती है। यादव सिंह को वह परेशानी परेशान-सा करने लगी। वह उसके चेहरे पर स्वाभाविक बिल्कुल नहीं लगती थी।

उसने गंभीरता से कहा, ‘मुझे अब इन चीज़ों का वक्त नहीं मिलता,’ उसने उदासी से शिकार की दीवारों पर टँगी चीज़ों की ओर देखा और फिर उसकी नज़र जंगली जानवरों की भूसा भरी खालों पर अटक गई। जैसे वह दूर, बहुत दूर देख रहा था। फिर उसने चौंक कर कहा, ‘चलिये आप को आपका कमरा दिखा दूँ। आप के लिये ऐसा कमरा छौंटा है मेरी स्त्री ने कि आपको ख़ूब रोशनी पहुँचे। पुराना घर है, आप देख रहे हैं। पुराने मकानों में आजकल की सी रोशनी नहीं होती। आपको तस्वीरें बनाने के लिये तो रोशनी की ज़रूरत होगी।’

सरवटे उठ खड़ा हुआ।

‘चलिये,’ कह कर यादव सिंह उसके साथ हो लिया। विशाल कमरे दिखाई पड़े। जब दो लम्बे कमरे पार कर लिये तब यादव सिंह उस पुराने किले की खूबसूरती से प्रभावित हो गया। पुराने ढंग का

इतना सुन्दर मकान उसने बहुत असें से नहीं देखा था। उसमें और एक महल में कोई अंतर नहीं था। उसमें काफी फर्नीचर था, जो सरवटे के पिता ने खरीदा था। क्योंकि वह बहुत पुराना नहीं था। भारी-भारी कोच पड़े थे जिन पर फूलदार कपड़ा चढ़ा था। छतों से कंदील और कबल तथा भाड़फानूस लटक रहे थे। दीवारों पर कुछ धार्मिक चित्र थे, परन्तु ज्यादातर विलायती तस्वीरें थीं, जिनमें मलका विक्टोरिया की तस्वीर, उसके पूर्वजों के चित्रों के बीच में टँगी हुई थी। जमीन पर ईरानी कालीन बिछे थे जो मुगलकालीन थे। दीवारों पर सुनहला काम और मीना के बर्तन रखे थे। सरवटे को फूलों का शौक था, यह इसी से प्रगट होता था कि बड़े-बड़े गुलदस्तों में सुन्दर-सुन्दर फूल रखे थे। बड़ी बड़ी की टिक-टिक आवाज दीवाल पर से सुनाई दे रही थी। चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी।

यादव सिंह को वह सब बहुत अच्छा लगा। उसके मुँह से निकला, 'आप का घर बहुत सुन्दर है।'

'आप राजा होकर ऐसा कहते हैं तो मुझे डर होता है, कहीं आप मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं,' सरवटे ने उत्तर दिया, 'लेकिन देखने में यह सब कितना भी अच्छा लगे, जिंदगी में यह सब परेशानियाँ ही हैं। मुझसे यह सब सँभलता नहीं। हमारे लिये यह मकान बहुत बड़ा है। मैं हूँ, सुधा है। हमारे यहाँ बच्चे भी नहीं हैं और सुधा की हालत जरा जो ऐसा ही रहती है तो मेरे दोस्त या मेहमान भी कम आते हैं। मैं चाहता हूँ वे आयें, इसीलिये पहले से ही उन्हें यह बताता नहीं, कि वे कहीं तकल्लुफ़ में मना न कर दें। इसी से आप को भी वहाँ मैंने नहीं बताया था। बच्चे नहीं हैं, मुझे इसका गुम नहीं है। वह तो होते भी हैं, नहीं भी होते हैं।'

सरवटे की आवाज कुछ खिंच गई। बहरहाल वह यादव सिंह को उसके लिये साफ किये गये दो कमरे दिखा गया। यादव सिंह थका हुआ

या । उस कमरे की सुन्दरता देखते-देखते वह आरामकुर्सी पर ही सो गया या सोचता रहा । थकान ने उसे दबा लिया था ।

उस कमरे की नीरवता उसके मन को सांत्वना देने लगी । उसने उठ कर कपड़े बदले और फिर बैठ कर सोचने लगा ।

साँभ का आसमान साफ हो गया था । दूर कहीं चरवाहे की लौटती भेड़ों के गले की घंटियाँ टिनटिना रही थीं । क्षितिज पर धूमिल ललिमा थी जो पहाड़ की ऊँचाई से देखने पर काफी भुकी हुई नजर आती थी । नीले पहाड़ों के रीढ़ की हड्डियों की तरह उनके ऊपर लम्बे-लम्बे बादल फैले हुए थे और धीरे-धीरे पंख फैलाये पक्षियों के झुंड उड़ते चले जा रहे थे ।

सघन बन में वृक्षों पर पक्षी मधुर स्वर से कलरव करने लगे थे ।

नौकर आकर कमरे में रोशनी कर गया ।

यादव सिंह ने बाल काढ़े और बाहर भाँका ! अब धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगा था । आकाश से अंजन बरस रहा था, भीना सा, भीमा सा ।

बाहर आहट सुनाई दी ।

‘कौन है ?’ यादव सिंह ने कहा ।

‘मैं ।’ भीतर सरवटे घुस आया । वह लम्बा आदमी इस समय काफी गम्भीर था । यादव सिंह को यह अच्छा नहीं लगा । आखिर इस संजीदगी का मतलब क्या हो सकता था । लेकिन फिर धीरे से वह मुस्कराया और वह मुस्कराहट अच्छी थी, नम्र थी, जिसने यादव सिंह के हृदय को उसके पास खींच लिया । उसने यह संदेह किया था कि शायद मुझको उसका आना अच्छा नहीं लगा । लेकिन अब वह दूर हो गया ।

‘आप खाना नहीं खायेंगे क्या ?’ सरवटे ने कहा, ‘मैं नीचे से आपको आवाज़ दे रहा था ।’

‘शायद मैंने सुना ही नहीं,’ यादवसिंह ने माफ़ी माँगने के स्वर में कहा।
‘तो फिर चलिये।’

नीचे आये तो वे एक ऐसे खूबसूरत आसमानी कमरे से गुज़रे जिसकी भीतों पर मध्यकालीन सुन्दर चित्र बने हुए थे। छतों पर फूल कढ़े हुए थे, जिनके बीच-बीच में सोने के पानी का काम था। आसमानी कमरे में हर चीज़ आसमानी थी। फूलदान में सफेद फूल ज़रूर थे। ऐसा लगता था जैसे सारा हल्का नीलापन, जो कि इस समय लैम्प की रोशनी में कुछ गहराई दिखा रहा था, वास्तव में इन फूलों का ही शेड था। यह विचार यादव सिंह के दिमाग में आया क्योंकि वह एक चित्रकार बन चुका था। आकाश की दूर तक की गहराई उस नीलेपन में ऐसे झलकती थी, जैसे वह अनंत का प्रतीक थी, जो कि शून्य की गम्भीरता के अपनत्व में उस कमरे की दीवारों की सीमाओं को अदृश्य कर देती थी। ऐसा लगता था जैसे कोई सुन्दर स्वर्ग की छत टँगी हुई है। उसके नीचे कोई आधार नहीं है, केवल आकाश ही चारों ओर है, जिसमें कहीं मुनहले बादल हैं, कहीं सूरज डूब रहा है, कहीं चन्दा उठ आया है और कहीं किरन फूट रही है। चारों भीतों पर चार प्रकार के दृश्य कमरे को इतनी पूर्णता प्रदान कर रहे थे कि यादव सिंह को लगा कि सारा समय अपने दिक्काल को लेकर वहाँ केन्द्रित हो गया है और जो उसमें बैठा है वह वास्तव में अनंत आकाश में ही है। उस कमरे में एक ओर शीशे से मढ़ी एक आलमारीनुमा मेज़ थी, जो अन्दर से इतनी गहरी नीली थी, और ऐसी बनी हुई थी कि देखने में वह समुद्र से उठती हुई तरंग का भ्रम पैदा कर देती थी। उस सुन्दर कमरे को देखकर बरबस ही यादव सिंह के मुख से फूट निकला, ‘कमाल है।’

सरवटे अचानक चौंक कर मुड़ा और उसने कहा, ‘आपको भी यही लगता है?’

‘क्या?’

‘आपने कुछ कहा था न !’

‘जी हॉ, मैं इसकी सुन्दरता की बात कह रहा था ।’

‘सुन्दरता !’ सरवटे बड़बड़ाया, ‘सुन्दरता ।’

‘क्यों ?’

‘कुछ नहीं ।’ कह कर सरवटे बढ़ गया ।

सरवटे अँगरेज़ तबियत का आदमी ठहरा और फिर पुराना रईस । ज़मीन पर बैठकर वह सिर्फ़ बिरादरी वालों के साथ खाता था । यहाँ तो बड़ी मेज़ लगी हुई थी । वह एक कुर्सी पर बैठ गया और उसने दूसरी पर यादव सिंह से बैठने का इशारा किया ।

यादव सिंह अभी तक सोच रहा था ।

‘आप कुछ ध्यान में लगे हैं ?’ सरवटे ने पूछा ।

‘जी हॉ ।’

‘पूछ सकता हूँ ।’

‘क्यों नहीं । मैं उस आदमी की अक्ल की दिल ही दिल में तारीफ़ कर रहा था....’

लेकिन सरवटे जैसे तैयार था । उसने उसे बात नहीं खत्म करने दी । पूछा, ‘किस आदमी की...’

‘वही जिसने उस कमरे का डिज़ाइन बनाया होगा ।’

‘आपका मतलब आसमानी कमरे से है ?’

‘जी हॉ ।’

इसी समय द्वार पर एक स्त्री दिखाई दी । गोरी । सुन्दर । बड़ी-बड़ी आँखें । रानी का सा लिबास पहने थी । मराठी होने के कारण वह लॉगदार साड़ी पहने थी, जो कि बहुमूल्य थी, लेकिन उसके पहनने के ढंग से लगता था कि वह ऐसी साड़ियों पहनने की इतनी आदी है कि उसके लिये इसमें कोई ध्यान देने लायक बात ही नहीं थी ।

यादव सिंह ने देखा तो वह उस रूप को पकड़ नहीं सका । उसे लगा वह छाया थी, या वह छाया नहीं थी । प्रकाश थी । जैसा उसने

सोचा था, उससे वह बिल्कुल ही भिन्न थी। उसे लगा वह चकित हो गया था, परन्तु उसके दूसरे विचार ने कहा कि चकित होने की इसमें कोई बात ही नहीं थी ! आश्चर्य आया और बहुत ही जल्दी, जैसे क्षण मात्र में ही चला गया। वह एक वास्तविकता थी और उसके बारे में अलग-अलग पहलुओं से अलग-अलग तरह से सोचा जा सकता था। लेकिन वह ऐसी सूरत थी, जो शायद आँखों के सामने न रहने पर भी आँखों से नहीं जाती।

या यह सब यादव सिंह का वहम ही था।

उसने कोशिश की वह उसके रूप को समझ ले। अब रूप को समझने का मतलब बहुत कठिन काम है। प्राची को आज तक देखकर भी लोग इतना ही समझे हैं कि उसमें से दिन निकलता है। सौंभ को आज तक निहार कर भी लोग इतना ही जान पाये हैं कि उसके पीछे रात का अँधेरा आता है।

वह सुधा के विषय में क्या सोचे ?

यादव सिंह समझ नहीं सका। उसे लगा वह एक रहस्यमयी स्त्री के सामने बैठा था।

साधारण-सी बात तो यह थी कि वह अत्यन्त लावण्यमयी थी। लावण्य और सौंदर्य में थोड़ा भेद होता है। सौंदर्य तो आकृति भर में समाप्त हो जाता है। लावण्य का लवण अर्थात् नमक से सम्बन्ध होता है। नमक मीठा नहीं होता, लेकिन वह बहुत अच्छा लगता है। उसके बिना सब कुछ फोका रहता है। और इसलिये स्वाद को जीवन देने वाली चीज के नाम पर ही लुनाई यानी कि लावण्य शब्द बना है। लुनाई आँखों को ही खुश करने वाली चीज नहीं होती, उसका न जाने मन की उन सुन्दर गहराइयों में भी सम्बन्ध होता है, जो कि एक हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेने में समर्थ होती हैं।

रूप सदैव जन्म नहीं लेता। इतिहास बताता है कि ऐसी रूपवती स्त्रियाँ कम ही जन्म लेती हैं जिनमें ऐसा देह, मन और आत्मा का केन्द्री-

करण होकर एक हो जाये कि फिर युग भंकारने लगता है। ऐसी एक क्लियोपेट्रा बताई जाती है। एक शायद अम्बापाली थी, एक और शायद हेलेन थी जिसके लिये द्रॉय नष्ट हो गया था। और एक ऐसी ही शायद शबनम भी थी, जो निसंदेह, यादव सिंह ने निश्चय से सोचा नूरजहाँ से ज्यादा खूबसूरत थी, और अब वह शबनम के बाद ऐसे ही रूप को फिर देख रहा था, वैसा ही रूप था यह जो कि एक पैनी चमचमाती छुरी की तरह था। देखने में सुन्दर, लेकिन अगर उसका काम शुरू हो जाता तो वह पेट की आँतों को भुक से काट देती। या यह कहा जाये कि वह एक बहुत ही खूबसूरत चिकना साँप था, जो दूध पीकर उसे भी अपने भीतर जहर बना लेता था।

यादव सिंह को लगा कि इस औरत की आँखों में वहाँ चीज़ है जो कि शबनम की आँखों में थी।

इस विचार ने उसे एक अजीब फुरफुरी से भर दिया और उसे लगा कि उसके शरीर पर अनेक चीटियाँ चल रही थीं, वह जिन्हें चलने देना चाहता था।

सुधा एक छुरहरे शरीर की सुगठित स्त्री थी; जिसकी कुलीन मर्यादा से कसी कंचुकी में से उसका दमदमाता यौवन फूटा पड़ रहा था और उसके भारी और मांसल नितंब उसके नारीत्व के प्रतीक थे। लेकिन वह अपने रूप के प्रति जैसे बिलकुल बेखबर थी। उसने एक नजर देखा और आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। लैम्प के प्रकाश में उसकी नाक की नथ चमकने लगी क्योंकि उसमें बेशकीमती मोती था और कानों में जो उसने बड़े-बड़े हीरों का ऐरन पहन रखा था वह दमदमा कर उसके गुलाबी गालों तक अपनी चमक डाल रहा था।

यादव सिंह को ताज्जुब हुआ।

उस औरत के नाखूनों पर भी गुलाबी थी। अगर सरवटे एक स्वस्थ पुरुष था तो उसके जोड़ पर वह एक बहुत ही स्वस्थ रमणी थी।

और फिर भी सरवटे यही कहता था कि उसकी पत्नी अक्सर अस्वस्थ रहती है। यह कैसी बात थी !

सरवटे ने उसका अपनी पत्नी से परिचय कराया। दोनों ने एक दूसरे को हाथ जोड़े और तब नौकर खाना लाने लगे। यादव सिंह को आश्चर्य नहीं हुआ कि वह स्त्री मेज़ पर बैठी थी, क्योंकि राजकुलों की स्त्रियाँ कभी चक्की-चूल्हे का काम नहीं करती थीं और यह वह एक राजा का पुत्र होने के नाते स्वयं जानता था।

भोजन करते समय एक प्रकार की गम्भीरता छाई रही। सरवटे काफी संकोचशील दिखाई दिया और वह भी अपनी पत्नी ही के सामने। ऐसा लगता था जैसे वह डरता था कि बोलते ही उसकी बेवकूफी जाहिर हो जायगी। यादव सिंह ऐसे आदमियों से भी मिल चुका था, जो चुप रहने में ही अपना कल्याण समझते हैं। लेकिन यादव सिंह ने यह अनुभव किया कि वह संकोच सरवटे में उसके कारण नहीं, अपनी ही पत्नी के कारण था। और यह विचार उसे और भी अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। ऐसा लगता था जैसे वह कुछ कहना चाहता था लेकिन अपने को काबू में करके चुप हो जाता था। कैसी एक घुटन में पड़ा हुआ लगता था वह। वह लम्बा व्यक्ति, सुदृढ़ और इतना स्वस्थ और उसमें यह निर्बलता ! वह ऐसा था कि स्त्रियाँ उसके पीछे आकर्षित होकर दौड़ सकती थीं, लेकिन वह आदमी इतना अभाव अनुभव कर रहा था और ताज्जुब सबसे बड़ा यह कि अपनी ही पत्नी के सामने ? वैसे वह ठीक लगता था।

बाद में यादव सिंह ने यह भी जान लिया कि वह आदमी मूर्ख नहीं था। उसकी अपनी धारणाएँ थीं। वह राजनीति पर भी बोलता था, उसने संसार के प्रसिद्ध लेखकों को पढ़ा भी था और उसका सबसे प्रिय लेखक बेकन था, जो कि यथातथ्य होने के लिये प्रसिद्ध था। बात करता था तो उसमें स्पष्टता रहती थी।

और उसकी पत्नी भगड़ालू नहीं थी कि वह उसे बात-जात पर डॉट

देती हो, जैसा कि दुनिया में होता भी है। उसकी पत्नी ने कभी ऐसा प्रगट किया हो, सो बात भी नहीं थी। क्योंकि ऐसी जगह पति या पत्नी में हर काम में खुचड़ निकालने की प्रवृत्ति होती है, जिसका यहाँ निशान भी नहीं मिलता था।

बात यह लगती थी कि सुधा का अपने पति पर ध्यान ही नहीं था। वह ऐसे रहती थी जैसे सरवटे वहाँ था ही नहीं। उसने यादव सिंह पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। जैसे उसने उसका भी इस योग्य नहीं समझा कि उस पर गौर किया जाये।

यादव सिंह ने समझा कि वह एक भगरूर औरत थी, जिसकी जगह में हीनत्व की भावना थी। अर्थात् वह दिल में कभी महसूस करके ऊपर से अपना बेहद बड़प्पन दिखाती थी, ताकि लोग उसकी ओर आकर्षित हों और उसकी प्रशंसा करें।

लेकिन यह खयाल भी गलत निकला क्योंकि सुधा की ऐसी कोई इच्छा प्रगट नहीं हुई कि यादव सिंह ही उस पर ध्यान दे।

यह बात यादव सिंह को खाने लगी। क्या उसने इनका आतिथ्य स्वीकार करके गलती की थी। सचमुच अगर शबनम होती तो क्या वह भी ऐसा ही करती ?

कौन जाने ! यादव सिंह ने सोचा। और इस बिचार ने उसे काफी किस्म से बेचैन कर दिया।

सरवटे ने कहा, 'आप ताज्जुब तो नहीं कर रहे हैं ?'

'कतई नहीं। क्यों आपको यह शक क्यों हुआ ?' यादव सिंह ने पूछा।

लेकिन सुधा ने न देखा, न वह मुस्कराई ही।

सरवटे अचछा आदमी था। न वह बनता था, न अपनी शान दिखाता था। सीधी सच्ची बात करता था। लेकिन जब वह सुधा के सामने होता तो एक खिचाव-सा दिखाई देने लगता। पति-पत्नी दोनों ही बड़े स्नेह से मिलते दिखते थे, बातें करते थे, मगर फिर ऐसा लगता था कि इन दोनों के बीच में एक बहुत मोटी दीवार आ खड़ी हुई है।

‘ज़रूर’

‘तो देखो।’

यादव सिंह ने देखा। खून जम कर इकट्ठा हो गया। फिर वह उठने लगा जैसे तना खड़ा हो गया। वह तो देह थी, जिसको देख कर पता नहीं चलता था कि वह स्त्री का शरीर है, या पुरुष का। और यादव सिंह ने देखा, उसके ऊपर फूलों की तरह सिर निकलने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस और एक लड़की का छोटा सर ग्यारह। और देखते ही देखते ऐलिस इन वन्डरलैन्ड की ऐलिस की तरह उन सब की गर्दन बढ़ने लगीं, और हवा में ऐसे हिलने लगीं, जैसे वे गर्दन नहीं थी, हवा में उड़ते हुए सॉप थे। और फिर ग्यारहऔं गर्दन घूमी-फिरी और उन सिरों ने यादव सिंह के सिर को सब तरफ से घेर लिया और उससे कहा, ‘मूर्ख उधर न जा। उधर न जा!’ यह सुनते ही वह स्त्री क्रोध से उठ खड़ी हुई और यादव सिंह ने देखा कि वे सब गर्दन खिंचकर उस धड़ में छिप गईं और जैसे मोमबत्ती गल जाती है उसी तरह वह तना गल गया और रक्त फिर फैल गया और स्त्री के मुस्कराते ही उस रक्त में आग लगने लगी और ऐसा लगा जैसे कई आदमी असह्य यंत्रणा में चिह्ना रहे हैं। वह यातनामृत्यु से भी भयानक है, दुर्वह है। और उस शक्ति को दिखा कर स्त्री ने मुस्करा कर यादव सिंह की ओर देखा तो यादव सिंह काँप गया क्योंकि वहाँ अब स्त्री नहीं थी, एक खून से भीगी कटार पड़ी थी।

यादव सिंह ने आँख खोलकर देखा। लैम्प के हल्के प्रकाश में उसने देखा कि वहाँ कुछ नहीं था। कितना भयानक स्वप्न था! कितना बीभत्स स्वप्न था वह!

वह सो नहीं सका। डर सा लगा। उसने एक सिरहाने रखी किताब उठा ली और लैम्प की रोशनी तेज करके पढ़ने लगा। बड़ी ही मुश्किल से उस रात के अंत में उषा का उदय हुआ।

दूसरे दिन जब सरबटे ने कहा, ‘सुधा!’

उसने कहा, 'जी !'

'तुम जानती हो कुँवर यादव सिंह क्यों आये हैं !'

'नहीं !'

बस उसने और कुछ नहीं कहा ।

सरवटे ने कहा, 'आपकी इच्छा है कि तुम्हारा चित्र बनायें !'

'चित्र !' सुधा ने कहा और फिर चुप हो गई ।

यादव सिंह बड़े कमरे में से घूमता हुआ आसमानी कमरे में चला गया । सुधा के मुँह पर हल्की सी मुस्कराहट आई और उसने अपने पाँत की ओर देखा, जो उस मुस्कराहट को देख कर आँर भी गंभीर हो गया ।

आसमानी कमरे में एक बड़ी सी तस्वीर लगी थी । यादव सिंह को आश्चर्य हुआ । वहाँ माधव राव सरवटे का एक पूरा कद आदम तैल चित्र था । बगल में उसकी पत्नी खड़ी थी । जिसके नीचे लिखा था—सुधा !

'सुधा !' यादव सिंह के मुख से निकला । तब तक पति-पत्नी वहीं आ गये थे ।

पहली बार जैसे सुधा ने यादव सिंह को गौर से देखा । अभी तक वह उसे मेज़-कुर्सी से अधिक नहीं समझती थी । लेकिन अब देखा कि वह मनुष्य था । यादव सिंह से उसका यह परिवर्तन छिपा नहीं रह सका । वह स्पष्ट ही कुछ संतुष्ट-सी दिखाई दे रही थी और गोविंदराव सरवटे चुप ही खड़ा था, जैसे उसे उस कमरे में ठहरना बिल्कुल ही पसंद नहीं आ रहा था । लेकिन संकोच के कारण वह जैसा स्थित था, वैसा ही खड़ा रहा ।

यादव सिंह चित्र को ध्यान से देख रहा था । और उसकी दृष्टि में पहली बार यह भ्रम हुआ कि वह चित्र सुधा नाम की किसी स्त्री का था । अवश्य क्योंकि वह मराठा वेश-भूषा में थी, लेकिन उसका चेहरा शबनम का-सा था ।

शबनम !

यहाँ भी !

यह कैसे हुआ ।

‘आपने देखा ।’ इसी समय उसे सुधा की आवाज़ सुनाई दी । वह चौंक उठा । उसने मुड़ कर देखा और फिर उसकी दृष्टि सुधा के चित्र से टकराई । चित्र स्पष्ट ही पुराने ज़माने का था नहीं तो सौ बरस पुराना तो लगता ही था ।

गोविंद राव सरवटे ने कहा, ‘यह मेरे परबाबा की तस्वीर है ।’

‘और यह ?’ यादव सिंह ने पूछा ।

‘यह मेरी परदादी की तस्वीर है । मेरे परबाबा माधवराव सरवटे इसी किले में रहते थे ।’ उसने इतना ही कहा ।

‘लेकिन,’ यादव सिंह ने कहा, ‘पुरानी सुधा और नयी सुधा की आकृति में इतना अधिक साम्य है कि मुझे तो सचमुच भ्रम हो गया ।’ उसने मुड़ कर देखा । तब उस आश्चर्य हुआ कि नई सुधा उसी सौ बरस पुराने ढंग के कपड़े पहने थी, ऐसे कि उस चित्र की सुधा से अधिक से अधिक समानता प्रगट कर सके । यह कैसी बात थी । आखिर इसकी वजह क्या थी !

‘वह क्यों ऐसी नकल करने की चेष्टा कर रही थी ।

‘आपका कुछ संबंध होगा,’ यादव सिंह ने कहा ।

‘हाँ,’ सरवटे ने ठंडे स्वर से कहा, ‘जिस कुल में से मेरी परदादी आई थीं, उसी कुल में से सुधा भी आई है ।’

सुधा ने स्वप्न भरी आँखों से देखते हुए यादवसिंह से कहा, ‘आप भी समझते हैं कि मैं बिल्कुल पुरानी सुधा जैसी हूँ ।’

उसके होठों पर मुस्कराहट फैल गई और यादव सिंह ने देखा कि वह दूर, दूर, कहीं अज्ञात, किसी अनंत में कुछ देखने का प्रयत्न कर रही थी । वह निश्चित नहीं कर सका कि वह अतीत में भोंक रही है, या अपने भविष्य पर दृष्टिपात करने का प्रयत्न कर रही थी ।

यादव सिंह ने हँस कर कहा, ‘आप उनके समान तो हैं ही, लेकिन

वह नहीं कि आप इसे नहीं जानती हों। आप प्रयत्न भी करती हैं कि अधिक से अधिक उनके समान दिखाई दें।’

‘यह सच है,’ सुधा ने कहा और फिर अपने पति की ओर देखा। गोविंदराव सरवटे के चेहरे पर परेशानी तो थी ही, अब एक भुँभलाहट का भाव भी आ गया था। जैसे उसे यह सब अच्छा नहीं लग रहा था।

यादव सिंह ने मुड़ कर गोविंद राव से पूछा, ‘क्यों आपका क्या न्यायल है? सुधा देवी जानबूझ कर पुरानी सुधा की भोंति बनने की कोशिश करती हैं या नहीं?’

‘बिल्कुल बेकार बात है,’ गोविंद राव सरवटे ने अत्यंत उपेक्षा से कहा और अपनी पत्नी की ओर देख कर कहा, ‘सब व्यर्थ की बात है! इन सबसे तुम्हें मिलता ही क्या है? ऐसा क्यों करती हो?’

‘कैसा क्या करती हूँ,’ सुधा ने कहा, ‘यह दो ही तो प्राणी थे, इस सारे खानदान में जिन्होंने कुछ किया भी। वरना तो यह खानदान ऐसा है कि किसी ने शायद कुछ किया ही नहीं। अगर मैं सुधा, उस सुधा की तरह हूँ तो हूँ ही। इसमें और किया भी क्या जा सकता है?’

गोविंद राव सरवटे के मुँह से आह-सी निकली, जैसे किसी ने उसके धाव को छू लिया था।

‘मैं नहीं समझता कि तुम्हें हमारे खानदान को गाली देने से क्या फायदा हो सकता है,’ सरवटे ने अपनी पत्नी से कहा, ‘और उस खानदान के लोगों को जिन्होंने सम्मानपूर्वक न्याययुक्त जीवन बिताया है।’

गोविंदराव के शब्दों में इस समय दृढ़ता थी। लेकिन सुधा ने काटकर कहा, ‘सिवाय माधवराव सरवटे और उनकी पत्नी सुधा के।’

वह व्यंग्य से हँस पड़ी। गोविंदराव सरवटे बात टालने को बाहर चला गया। यादव सिंह को रहस्य की झलक मिली। अब उसने निगाह भर कर सुधा की ओर देखा। सुधा उस चित्र की ओर देखती हुई जैसे ध्यान में डूब गई थी। यादव सिंह को वह उस समय बहुत ही भली

लगी। उसके मन में ज्वर सा उठने लगा। लेकिन क्षण भर बाद ही उसे लगा कि सुधा की जगह उसके सामने शबनम खड़ी थी। शबनम !!

और कोई नहीं !

एक दिन क्या शबनम इसी तरह मुअज़्ज़म के सामने भी खड़ी हुई होगी ? क्या मखमूर को उसने इसी नज़र से देखा होगा ? क्या अब्दुल को उसने इसी अदा से भड़काया होगा ? क्या नवाब की बेगम को उसने इसी हुस्न से जलाया होगा ? क्या नवाब कुतुब इसी छवि को देखकर अपने को भूल गया था ! क्या नवाब के हकदार रिश्तेदार भाई को इसी रूप ने मिटा दिया था ? मुश्ताक को इसी ने जान पर खेलने की आग से जलाया था ! क्या जाट सरदार इसी के पीछे धर्म की बात को छिपा गया था ! क्या बड़े नवाब को इसी ने गिराया था ! क्या मकान मालिक के बाप को इसी ने खत्म किया था। और अभी ही कुछ दिन पहले इसने एक अबोध बालिका की हत्या की थी ! कल यह रात को भी आई थी ! और इसी ने मुझे रक्त की नदी दिखाई थी !

उसको रोमांच हो आया। जब उसने फिर देखा तब भी सुधा एकदम निर्निमेष दृष्टि से सुधा के चित्र की ओर देख रही थी, जैसे वह यह अनुभव करने का प्रयत्न कर रही थी कि वह और कोई नहीं। वही वह सुधा है जो सौ बरस पहले थी। उस जन्म में वह माधवराव सरवटे की स्त्री थी, इस जन्म में वह गोविंदराव सरवटे की स्त्री है। वही किला है। वही वैभव है। वही सब है। उसी खान्दान में उस सुधा का जन्म हुआ था। उसी खान्दान में इस सुधा का जन्म हुआ है। दोनों में कोई भेद ही नहीं है, क्योंकि आत्मा एक ही है।

‘सुधा देवी !’ यादव सिंह ने कहा।

‘ओह !’ वह जैसे चौंक गई।

‘गोविंदराव जी चले गये।’

‘वे घबराते हैं।’

‘क्यों ?’

‘वे अपने पूर्वजों को बहुत अच्छा मानना चाहते हैं। बहुत अच्छा। वे असलियत का सामना नहीं करना चाहते। अगर मैं न होती तो शायद उन्होंने इस चित्र को ही नष्ट कर दिया होता। मिटा दिया होता। लेकिन मुझे यही दो व्यक्ति अच्छे लगते हैं। इनकी बड़ी लम्बी कहानी है। फिर किसी वक्त आपका सुनाऊँगी।’

रात को अपने कमरे में यादव सिंह का अचानक याद आया। उसने वही शबनम का चित्र निकाला जो उसे कलमदान में मिला था। देर तक वह उसे देखता रहा। एक चित्र बच रहा है केवल। बाकी सब नष्ट हो गये ! नवाब कुतुब के हकदार भाई ने ही उन्हें नष्ट कर दिया होगा। वह उससे डरता था। उसके गज़ब के हुस्न को देखकर वह उसके सामने पड़ने से डरता था।

छाँटी सी तस्वीर आँखों के आगे बड़ी होने लगी और एक औरत सामने मुस्कराने लगी। वह कौन थी ! शबनम !

उसने कहा, ‘कुँवर !’

उफ़ ! उसके बोलने में कितनी मादकता थी। कितना मनोहर लास था। इस आवाज को सुनकर किसी पर जादू न हो यह कैसे संभव था ! कहते हैं कि अर्जुन ने उर्वशी का अस्वीकार कर दिया था। लेकिन अर्जुन की अर्जुनाई धरी रह जाती अगर वह उसे देख लेता ! वाह ! क्या रूप था !

उसकी फँसी-फँसी चोली और नाक में लटकता बुलाक। उसके मिस्सी से रँगें दाँत जिनसे होठों पर लगी पान की लाली कहर दाती थी। उसके अंजन अँजे नयन। गला ऐसा सुराहीदार कि उसमें से उतरती पान की पीक दिखाई दे रही थी। ओढ़नी सिर पर डाले वह कैसी सुन्दर दिखाई देती थी ! उसके सघन नितंब ! उसकी मांसल जंघाओं पर झलमलाता रेशमी गरारा ! उसके कुर्चों के बीच में चमकता हुआ वह बड़ा सा पुखराज जिसके चारों तरफ पन्ने जड़े हुये थे। उसके कंठे में हीरे और लाल जड़े हुये थे।

क्या यह वही औरत थी जो कल रात मिली थी ! वह खून का दरिया इसी के इशारे पर हिलोरें ले रहा था !

उसकी भवें कमान सी थीं । और आँखों में जैसे लाखों सुनहरे ग्वाब डूबे हुए थे जैसे उत्तरी ध्रुव के द महीने के दिन में अनेक ग्लेशियर अपनी सतरंगी छायाएँ, अपना इन्द्रधनुषी आलोक लिये धीरे-धीरे नीले, गहरे नीले, प्रशांत जल पर डूबते-उतरते हुए तैर रहे थ । और उसकी बरौनियों में जैसे वह शक्ति थी कि वह जिधर उठती उधर ही गति के स्पंदन को स्तब्ध कर देती । होठ पतले थे, रसीले से दिखाई देने । उसका रंग कैसा था जैसे किसी ने मलमल की चादर के पीछे पूनम के चंदा को छिपाकर बीच में दीपक जला दिया हो, जिसकी शिग्या में ऐसा लगता जैसे चन्द्रमा धीरे-धीरे आकर केन्द्रित होता जा रहा है । गुलाब की पंखुड़ियाँ शर्माकर जैसे उसे देखकर सिकुड़ती जा रहीं थीं । वह कितनी वासनामय थी, फिर भी कितनी रहस्यमय लगती थी । उसे देखकर प्यार करने की चाह होती थी और अपने को मिटा देना उसके लिये वैसा ही अच्छा लगता था, जैसे शमा के चारों तरफ परवाना अपनी तबियत से घूम-घूमकर ऐलानिया फेरी दे-देकर, अपने पंखों को जला-जलाकर शहीद हों जाता था । ऐसी थी वह शबनम !

रूप का अनिघ्र भण्डार थी वह । जैसे इस क्षितिज से उस क्षितिज तक आलोक वास था, दूर-दूर तक रस सा भीना सा मद विभोर था ।

‘कुँवर !’ स्त्री ने फिर कहा, ‘तुमने सारे दस्तावेज़ देखकर मेरी जिन्दगी की असली बात जान ही ली ।’

वह मुस्कराई ।

यादवसिंह ने कहा, ‘मैं जानता हूँ शबनम ! तुम जितनी बुरी नहीं हो, जितना संसार ने तुम्हें कहा । तुम जिससे प्रेम करती थी उसने धर्म के नाम पर तुम्हें ठुकरा दिया । वह क्या तुम्हारे दिल के लिये कम चोट थी ? तुम्हारा तो इसमें कोई दोष नहीं था ! तुम्हारा बाप लालची था । उसने मजहब बदला, लेकिन तुम क्या कर सकती थी ।

मुअज्जम आया। वह लड़का था, तुमने उसे पसन्द नहीं किया। औ उसने तुम्हें जबर्दस्ती अपना गुलाम बनाना चाहा, तुम उसे छोड़ आ क्योंकि तुम्हें यह कुबूल नहीं हुआ कि तुम्हें कोई भेड़, बकरी की तर अपना बना ले ! जिस मखसूर से तुम्हारी शादी हुई वह पचास बर का था। और तुम जवान थी। तुम्हारी ज़िन्दगी जिन रंगीनियों के चाहती थी, वह उसके पास कहीं थी। वह कुश्ते और अफीम खाक सिर्फ तुम्हें योग्य समझता था। अब्दुल कमीना और अहसान फ़रामोश था। तुमको जवानी की उमंगों ने उसकी तरफ़ मोड़ा, मगर वह तुम्हारे ऊपर हावी हो जाना चाहता था। वक्त ने उसे तुमसे ऊपर जायदाद की हस्ती का अहसास कराया, तुम इसे कैसे सह सकती थी। नवाब की बेगम जल-जल कर मर गई। मगर तुम्हारा इसमें क्या अपराध था। वह भी तो दूसरी बेगमों को जलाकर ही ऊपर रहती थी, सबके सीने पर मूँग दलती थी। तुमने नहीं; तुम्हारे हुस्न से नवाब पागल हो गया। मगर तुम क्या कर सकती थी ! नवाब कुतुब बच्चा होने के बाद तुमसे रुख फेर रहा था ! दूसरी तरफ़ आँखें फेंक रहा था ! और फिर उसका भाई ! वह तुम्हारे वेटे का दुश्मन था। वह तुम्हें जादूगरनी समझ कर तुमसे मिलता तक नहीं था ! तुम बड़े नवाब से मिली पर उसने इस बीच तुम्हारी रही-सही जवानी को लूटा और वक्त पर हाथ खींच गया ? तुमने दोनों को न छोड़ा तो मैं इसे तुम्हारी हस्ती की तपिश मानता हूँ। वह जो कि बुझना नहीं जानती, अपने को जला कर जलती है। मुश्ताक ! आया था। तुमने उसे बुलाया। लेकिन मुहब्बत की कसौटी पर वह हीरा बनता, बशर्ते कि आखिरी वक्त में जब वह फँस गया था, रोता नहीं। तुम इसके लिये कर भी क्या सकती थी। जाट सरदार तुम्हें लाया। उसने तुम्हें घर रखा, मगर बाहर वह कुछ दिन बाद ही दूसरी औरतों में मौज उड़ाने लगा ! फिर तुम चुप रहतीं ? वह वक्त तुम्हारा कौन था ? जब तुम अछेड़ थीं तब वह महाराज ही था। कहाँ नवाब ! कहाँ महाराज। तुम मजबूर थी। लेकिन

उसकी निगाह तुम्हारे मरने पर थी ! उसने जायदाद हथिया ली ! तुमने मर कर उसे मारा । तुमने उसी प्रतिहिंसा में उसके बेटे को मिटा दिया । लेकिन तुमने एक काम ग़लत किया । कमल सिंह की बच्ची ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमसे कमल सिंह का बदला, पहले तो उसके बाप से लिया और उसके बाद उसकी बेटे से ! तुम उसका वंश नाश करना चाहती हो । ऐसा कठोर हृदय क्यों हो गया है तुम्हारा ! संसार में किस पर दुख नहीं पड़ता, लेकिन इस तरह तो उसका बदला नहीं लेना चाहिये । तुम समझती हो तुम्हारी यह प्रतिहिंसा सदैव बली रह सकेगी ?

लेकिन वह स्त्री अब मुस्करा नहीं रही थी ।

‘प्रतिहिंसा !’ वह पुकार उठी, ‘मेरी प्रतिहिंसा नागिन की प्रतिहिंसा है । मैं डरूँगी, पलट जाऊँगी, स्वयं मूर्च्छित पड़ी रहूँगी लेकिन छोड़ूँगी नहीं ।’ उसने फिर दौत पीस कर कहा, ‘भेड़िये ! मुझे फाड़ खाना चाहते थे । क्योंकि मैं स्त्री थी तो क्या इसीलिये मैं उनकी इच्छा के अनुसार चलती ? मुझे क्या अपने मन की बात करने का कोई अधिकार ही नहीं था ।’

वह रुकी । फिर कहा, ‘लोग मुझे पतिता, डायन, नीच कहते थे । मैं सुनती थी । क्या करती ? सड़क पर उतर पाती ! वहाँ मुझे क्या मिलता ? बीमारी, घृणित बीमारी वही जो बड़े नवाब ने मुझे दी थी । मैंने उसकी कितनी तकलीफ़ सह कर इलाज करायी थी, जानते हो ?’

‘जानता हूँ,’ यादव सिंह ने बड़बड़ाया, ‘तुम ठीक कहती हो । इस संसार ने तुम्हारे साथ न्याय नहीं किया । लेकिन एक बात कहूँ ?’

‘कहो ।’

‘तुम यह ठीक समझती हो कि एक स्त्री को इतने मर्दों के साथ रहना चाहिये ? क्या यह पाप नहीं है ? क्या तुम्हारा सम्मान बलिदान देने से डरता था । क्या सीता ने यही किया था ? क्या तुमने सतियों

के चरित्र नहीं सुने थे। यह तो सच है कि इन्द्रिय सुख तुम्हें भी इतना निर्बल बना चुका था कि पुरुष के बिना तुम्हें जीवन में आनन्द भी नहीं आता था। मैं ठीक कहता हूँ।’

‘नहीं,’ स्त्री ने कहा, ‘तुम स्त्री को माता के योग्य मानते हो, या देवी, ‘तुमने स्त्री को उसकी अपनी सत्ता की स्वतन्त्रता कहाँ दी। कहीं नहीं। कहीं नहीं।’

वह फूटकार कर उठी और यादव सिंह ने देखा कि उसके मुँह से ज्वाला सी निकली जिसने उसे घेर लिया और वह आग में खड़ी-खड़ी मुस्कराती रही, मुस्कराती रही यहाँ तक कि कुछ ही देर बाद धुँआ रह गया, स्त्री गायब हो गई।

नौकर ने पुकारा, ‘कुँवर जी !’

‘कौन !’

‘सरकार सो रहे हैं। चाय पी लीजिये !’

‘अच्छी बात है,’ कहता हुआ यादव सिंह उठ खड़ा हुआ। उसने सिर में कंधी फेरी और चाय पीकर कपड़े बदले। हजामत बनाई और स्नान किया और तब वह नाश्ते के लिये नीचे उतर कर गया। इस समय उसका मन हल्का था। रात की बातें बीत चुकी थीं। जब वह आसमानी कमरे में से गुज़रा तो उसे बड़ा सुन्दर लगा और वह एक क्षण दीवारों को देखता रहा। फिर उस चित्र को देखा, जिसमें माधव-राव सरवटे और सुधा थे। उसे कल की सब बात याद हो आई और एक नया ही सिलसिला शुरू हो गया।

आज सरवटे ने वह कथा स्वयं सुनाई। बाग में घूमते वक्त वह अपने आप बोला, ‘कुँवर साहब !’

‘जी,’ यादव सिंह ने कहा।

‘आप सोचते हैं जाँ।’ वह कहते-कहते रुक गया।

‘क्या ?’

‘यही कि मैं सुधा से कल नाराज़ हो गया था।’

यादव सिंह ने कुछ नहीं कहा ।

‘मैं समझता हूँ आप को ऐसी गलतफहमी हो सकती है ।’

यादव सिंह ने कहा, ‘वह ऐसी कोई बात नहीं थी ।’

‘जी नहीं, थी । क्योंकि मैं ऐसे उससे नहीं बोलता ।’

‘तो क्या आप लोगों में कभी मतभेद नहीं होता ?’

‘नहीं । बस इसी बात पर होती है ।’

‘लेकिन मैं इस बात को समझा नहीं हूँ ।’

‘यही तो बात है कि वह कोई बात ही नहीं है ।’

‘यह कैसे ?’

‘मैं सोचता हूँ कि कभी-कभी आदमी ऐसा क्यों हो जाता है ?’

क्या वह अजीब-अजीब बातों में विश्वास करने लगता है ?’

‘आप किसी ऐसी बात को नहीं मानते ।’

‘नहीं । शायद आप जानते हैं ।’

‘जी हाँ ।’

‘जैसे ?’

‘जैसे मैं क्या बताऊँ ? मैं तो यही सोचता हूँ कि इस दुनिया में ऐसा बहुत कुछ है जिसे हम नहीं समझते । आप ही देखिये न ? इस तरह की चीजें न सिर्फ़ और बातों में .. बल्कि आप यही देखिये अंगरेज कैसे इस हिन्दुस्तान के मालिक बन बैठे । उनका सितारा बुलंदी पर आ गया । कैसे ? आप समझते हैं इसलिए कि हिन्दुस्तान एक नहीं था । नहीं, इसलिये कि वे ही ईश्वर के चुने हुए लोग थे । वर्ना पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, यह सब क्यों नहीं हिन्दुस्तान के मालिक हुए ? इंगलैण्ड ! जरा सा एक जजिरा है । देखने में ऐसा लगता है जैसे कोई खरगोश भागने के लिये तैयार सा चौकन्ना होकर बैठा है । लेकिन यह हिन्दुस्तान ! जो कि एक शेर सा मुँह फाड़े खड़ा है आज-कल उसके पैरों के नीचे कुचला पड़ा है । इसी तरह ईश्वर के शासन में भी अजीब बातें हैं । अंगरेज क्या, आप समझते हैं, इन बातों का

मानते नहीं ? खूब मानते हैं । मैं भी उन चमत्कारों को मान सकता हूँ जो कि मेरी समझ के बाहर हैं । आखिर इंसान सभी चीजों का तो समझ नहीं सकता न ?

सरवटे गंभीरता से सब सुनता रहा । उसने क्षण भर कुछ नहीं कहा । पास पड़ी कैंची उठा कर उसने एक बड़ी भाड़ी में से निकली एक टुटकी टहनी को काट कर उसे खूबसूरत बना दिया और कैंची रख दी ।

सरवटे ने फिर कहा, 'मैं सब कुछ मान सकता हूँ लेकिन एक बात मुझे सुधा की पसंद नहीं आती ।'

‘वह क्या !’

‘यही कि वह खानदान की पुरानी बातें इसीलिये कचोटती है कि उनमें कोई कमी नज़र आये और वह उनमें रस लेती है ।’

‘मैं नहीं समझा ।’

‘मैं बताता हूँ । वह जब खानदान की किसी पुरानी बुराई को उधेड़ती है तब वह भूल जाती है कि आखिरकार उसका हमसे संबंध है । वह हमारे जीवन से निकट होती है और उसका नज़रिया आप जानते हैं क्या है ?’

‘नहीं ।’

‘वह सिर्फ उसे एक दास्तान बनाकर सोचती है । वह जैसे एक रूमानी दुनिया में रहती है, जिसका सिर्फ तारीख से ताल्लुक है ।’

यादव सिंह सुनता रहा । सरवटे ने फिर कहा, ‘मैं यह मानता हूँ कि लोग ऐसा कहते हैं । इसका मुझे यकीन है कि वे इसे एक बदनामी का बायस बनाते हैं । बुराई करते हैं । लेकिन मुझे दूसरी चीज़ लगती है । आया वह कल की बात थी, या परसों की, या वह आज की है, वह हमारे खानदान की है, तो इसका ज़ाहिरा मतलब यह है कि वह हमारी बात है । और जब वह हमारी है तो उसे भूल जाने में हाँ हमारी बेहतरी है । मैं नहीं समझ पाता कि लोग कैसे अपने घरों के बारे में, अपने ही खानदान के बारे में हत्या, भूत आदि की बातें किया करते हैं ।’

‘वह तो कोई बात नहीं। हमारे यहीं की बात है। बहुत दिन से सुनते आ रहे थे कि हमारे एक चचा ने दूसरे चचा से इस कदर दुश्मनी निभाई की उन्हें दीवार में चुन दिया और उसी रात उनका दुश्मनों ने कत्ल कर दिया। दूसरे चचा वहीं मर गये। बरसों बाद मेरे पिताजी ने उस दीवाल को कमजोर जान कर उतरवाया तो उसमें जंजीरो में बँधा एक हड्डी का ढाँचा निकला, जिसे उन्होंने रातों रात कहीं गड़वा कर छिपा दिया। लोग कहते हैं तो वह सब सच भी हो सकता है, क्योंकि पुराने वक्ता में हुक्मरानों के अखितयारात कहीं ज्यादा थे जो आजकल सरकारें अँगरेज के आने पर खत्म हो गये हैं। जान की अमानत देना और सात खून माफ होना, भी अब दुनिया में नहीं रहा।’

सरवटे ने कहा, ‘लेकिन उस दुनिया के मयार दूसरे थे। आज की दुनिया दूसरे ही मयारों को अच्छा समझती है।’

‘आप ठीक कहते हैं। मैं मानता हूँ लेकिन सवाल तो यह उठता है कि जब आप का खान्दान भी मेरे खान्दान की तरह ही पुराना है, तो उसमें ऐसी चीज का होना या पाया जाना किसी कदर क्यों कर नामुमकिन माना जा सकता है।’

सरवटे को यह बात नहीं जँची।

यादव सिंह ने कहा, ‘एक बात पूछूँ !’

‘जी।’

‘आपका किला काफी पुराना तो है ही, इसमें कभी आपने कुछ ऐसी भी चीज़ देखी जिसे हम कह सकते हैं कि.....’

सरवटे ने व्यंग से काटा, ‘भूत है।’

‘जी हाँ।’ यादव सिंह ने उत्तर दिया।

‘आपको यह शक क्यों हुआ ?’

‘महज इसलिये कि यह मकान भी काफी पुराना है और इसमें भी बहुत से लोगों का जीना-मरना जरूर हुआ है।’

लेकिन सरवटे ने गंभीरता से कहा, 'जी नहीं। यहाँ भूत नहीं है !'

उसकी गंभीरता देखकर यादव सिंह मुस्करा दिया।

'आप भूत को मानते हैं ?' उसने फिर पूछा।

'आप ?' यादव सिंह ने टोका।

'मैं जानता हूँ कि अगर वे हैं तो उनसे डरना चाहिये।'

'क्यों ?'

'क्योंकि भगवान भूत का दर्शन तभी कराता है, जब वह किसी तरह की सजा देता है या पहले से आने वाले संकट की चेतावनी देता है।'

यादवसिंह सोचने लगा। सरवटे ने कहा, 'आप मेरी बात मानते हैं।'

'वहाँ तक तो खैर मानता ही हूँ, जहाँ तक भूत होने का ताल्लुक है। आप अपनी तरफ से यकीनन नहीं कहते, मैं पक्की तरह से मानता हूँ। क्योंकि मैं आत्मा को मानता हूँ। और आत्मा की कोई भी अतृप्ति मरने के बाद मनुष्य को भूत बनाने के लिये काफी है।'

सरवटे ध्यान से सुनता रहा।

'आपने भूत देखा है ?' उसने पूछा।

'हाँ,' यादव सिंह ने उत्तर दिया।

वह चौंक उठा। पूछा, 'बताइया ?'

'जी मुझे भूत नुकसान नहीं करता।'

'वह कौन है ?'

'एक औरत है जो करीब साठ बरस पहले मर गई थी।'

'औरत ?'

'जी हाँ। वह इतनी बुरी नहीं थी, जितनी लोग उसे समझते थे।'

'आप को कैसे पता चला।'

'मैंने दस्तावेजों में उसका जिक्र पढ़ा है।'

'वही बात,' सरवटे ने मुस्करा कर कहा, 'वहम ! वही लाइलाज वहम ! जिसकी दवा हकीम लुकमान के पास भी न थी।'

यादव सिंह आहत हुआ । परंतु उसने कहा, 'जाने दीजिये ।'

'तो सुनिये । मैं आप को इसी वहम की कहानी सुनाता हूँ,' सरबटे ने कहा, 'आप ही फैसला दीजिये ।'

गोविन्द राव ने, अपने साथ, एक बाग की संगमरमर की चौकी पर बैठने का इशारा करते हुए यादव सिंह से कहा, 'यह किंदा शिवाजी से भी पुराना है ।

यादव सिंह बैठ गया और गौर से सुनने लगा ।

'कहानी यों थी । माधवराव और सुधा का विवाह बड़ी धूमधान से हुआ । और जो खन्दान के बारे में बहुत सी बातें हुईं, मस्तलब की बात यह थी कि परदादी सुधा मर्दाने लिबास में माधवराव सरबटे के साथ घोड़े पर बैठ कर शिकार करने जाती थीं, जैसे बाजीराव के साथ मस्तानी जाया करती थी । उन्हीं दिनों पास में आकर एक परिवार बसा जिसमें एक युवक था । उसका नाम था लक्ष्मीधर । वह हिंदी, मराठी दोनों में कविता करता था । उसको बहुत अच्छी वीणा बजानी आती थी और स्वस्थ और सुन्दर भी था । लक्ष्मीधर जितना कवि था, उतना ही योद्धा भी था । वह तलवार बहुत अच्छी चलाता था । यह किसी राजा का आश्रित होकर नहीं रहा, न उसने कहीं जगह ही तलाश की । दो तीन दरबारों में गया भी और वहाँ से दुशाले भी प्राप्त किये लेकिन वह जमा जाकर सुधा परदादी के गांव में । सुधा के पूर्वज कुलीन थे और वह कवि उनके घर आया-जाया करता था । कहते हैं उसी ने सुधा को घोड़े पर चढ़ना सिखाया था । वह ब्राह्मण था और मराठों में उसका काफी सम्मान होता था । उसके बाद सुधा का विवाह हो गया और वह भी इसी जगह आ बसा । और यहाँ भी उसका आना-जाना बदस्तूर बना रहा । यों ही, एक दिन वह अकेला घर लौट रहा था कि रास्ते में उसे डाकुओं ने घेर लिया, उसके रुपये छीन लिये और उसे मार डाला । लेकिन अफवाह यह उड़ी कि यह काम डाकुओं का नहीं था बल्कि माधवराव सरबटे और उनके एक साथी का था । इस

बात का कोई सबूत नहीं था, लेकिन यह बात परम्परा से लोगों में आज तक चली आ रही है ।’

सरवटे ने कहा, ‘पता नहीं इसमें कितना सच है, कितना नहीं । कौन जाने !’

‘लेकिन,,’ उसने रुक कर कहा, ‘मुधा इसको ऐसे नहीं लेती । वह कुछ अजीब ही रख लेती है ।’

यादव सिंह ने देखा । वह चिंतित था ।

‘मैं चाहता हूँ,’ गोविंदराव सरवटे ने कहा, ‘कि बात आई गई खत्म हो जाये, लेकिन यह बार-बार उसे फिर से जगाने की कोशिश किया करती है । आप क्या समझते हैं कि ऐसा करना उसके लिये फायदेमन्द है ? ठीक है ?’

यादव सिंह ने उत्तर नहीं दिया । उसने देखा गोविंदराव सरवटे ठीक कहता था । न इसमें कोई फायदा था, न उसे ठीक ही कह सकते थे । खानदान की तो पोल को छिपाना ही दुरुस्त था ताकि लोगों को कहने का मौका नहीं मिले ।

लेकिन इसके बाद यादव सिंह की दिलचस्पी मुधा के प्रति कहीं अधिक बढ़ गई । उसे वह स्त्री अच्छी लगने लगी । बल्कि वह कल्पना भी करने लगा कि असल में मुधा सरवटे से खुश नहीं है । वह एक कलाकार की तलाश में है क्योंकि वह कल्पनाशील युवती है, जब कि गोविंदराव ऐसा नहीं है । वह कभी उपमा और उत्प्रेक्षा नहीं देता । सीधी बात करता है । और मुधा इन वैभव के बन्धनों में अपने को सीमित नहीं कर लेना चाहती ।

यद्यपि यादव सिंह स्वयं चेतन नहीं था, फिर भी अब वह अनजाने ही ऐसी चेष्टा में लग गया कि किसी तरह मुधा को अपनी ओर आकर्षित कर सके । और तस्वीर बनाने का काम ऐसा था कि वह घण्टा उसे अपने सामने रखता और खूब ही देखता ।

जीवित मांस की प्रतिमा का दमदमाता यौवन उसके भीतर शराब

की तरह उतरने लगा । और शबनम को वह धीरे-धीरे भूलने : लगा । भूलने लगा कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अब भी वह उसे कभी-कभी अपने कमरे में खड़ा देखता । लेकिन उस पर जैसे ध्यान नहीं देता । जब वह निगाह उठा कर देखता तो वह जो कि उसे शबनम सी लगती, गौर करते ही सुधा जैसी दिखाई देने लगती । कभी वह सोचता, क्या यह पाप नहीं है ? गोविंदराव सरवटे इतना विश्वास करता है और वह क्या करने की सोच रहा है ! लेकिन सुधा भी तो ऐसी ही लगती है जैसे वह कुछ भी चिन्ता नहीं करती । वह दूर किसी स्वप्नलोक में क्या-दूँटा करती है ? शबनम के नेत्रों में अब ऐसा व्यंग कयां रहता है ? वह ऐसे कयां देखती है, जैसे कि वह सब समझ लेगी ।

लेकिन यादव सिंह ने अपनी प्यास को कभी भी प्रगट नहीं होने दिया । अपने भीतर ही छिपाये रखा । कभी-कभी वह उसे अपने से भी छिपाने की चेष्टा करता और तब न जाने शबनम आकर कैसे कह उठती थी कि छिपा लो । लेकिन मुझसे भी तुम छिपा लोगे ।

यादव सिंह इस पर चौंक उठता ।

और सुधा तो खुद एक ऐसी उलझन में थी । वह कयां अपने को पुरानी सुधा बनाना चाहती थी । कयांकि उसमें एक रोमान्स था । कैसा था वह अजीब भाव कि वह अपने को पुराना समझती थी । क्या वह उसके शाश्वत यौवन की ही भूल थी ! वह अपने पति को नहीं मानती थी । उसकी नजर में वही थी जो कि माधव राव की पत्नी थी, जो कि अब गोन्दिराव की पत्नी थी और यह ऐसी ही तो भूल थी, जिसको उसने शबनम में दूसरे ढंग से देखा था । क्या था यह !

वासना !!

वासना का अम्बार !!

वासना का प्रसार, आकाश और पृथ्वी में जैसे उसकी ही तन्मय व्याप्ति !!

यादव सिंह का रोम-रोम सुलग उठा । उसने रात को फिर शबनम का चित्र देखा । परन्तु आज स्त्री नहीं आई । वह सो गया ।

अचानक उसने देखा कि वह कहीं निविड़ अंधकार में खड़ा है जहाँ कोई नहीं है, और वह जगह इतनी ज्यादा सूनसान है कि उसका कहीं अंत नहीं । यादव सिंह ने हरा-भरा मैदान देखा । वह उसमें लोटने लगा । उसने उसे बहुत सुख दिया, लेकिन उसमें एक अजीब तरह की सुलगन भर गई । और वह उठ खड़ा हुआ । वह चलने लगा । सामने सीढ़ियाँ थीं । वह उन पर चढ़ने लगा । कब तक चढ़ता रहा पता नहीं । पर अब वह थक गया । उसके पाँव दुखने लगे । तब उसे एक पुल मा दिखाई दिया । पुल नहीं था, दो बड़े-बड़े पत्थर समानान्तर पड़े हुए थे । बीच में दोनों मिले हुए नहीं थे ! अब वह उन पत्थरों को पकड़ कर झूल गया और वे पत्थर इतने चिकने थे कि वह दूर ऊँचे पर शून्य में लटका हुआ उन पर फिसलने लगा । अंत में वह पत्थर खत्म हो गये पर वह शून्य में उड़ने लगा । क्या वह सचमुच उड़ रहा था ।

उसे ताज्जुब हुआ पर वह उड़ रहा था । वह उड़ता ही गया । उड़ता ही गया । अंत में वह ऐसे अंधेरे में पहुँचा जहाँ उसे सब दिखाई दे रहा था ।

वहाँ उसने देखा कि एक बहुत ही ऊँची चिकनी दीवार खड़ी है जिस पर अंधेरे की गहरी-गहरी छाया भीतर तक उतर गई है । उसको नहीं पता चला कि वह कहाँ खड़ा है क्योंकि उसे दीवार शून्य में दिखाई दी । वह नीचे उतरा तो भी उसका अंत नहीं था परन्तु ऊपर वह चढ़ ही नहीं सका । ऊपर का हिस्सा हर हालत में उससे छ हाथ ऊपर रह आया । वहाँ एक स्त्री नग्न खड़ी थी, किन्तु वह नग्न दिखाई नहीं देती थी, ऐसा आभास अवश्य होता था कि वह वस्त्रहीन है ।

वह कौन थी ! वह सुधा थी !

लेकिन वह उसकी ओर नहीं देख रही थी ।

वह अनंत आकाश के अंधकार में भौंक रही थी ।

तब वह व्याकुल हो गया ।

उसी समय धीरे-धीरे कहीं बीण बजने लगी और सुधा नाचने लगी । वह बीण थी कि तानपूरा था ! यादव सिंह इसे नहीं समझ सका । पर उसने देखा कि एक ओर से अँधेरा बढ़ता आ रहा था । अरे वह अँधेरा नहीं था । वह तो समुद्र था । लाल ।

रक्त का समुद्र !

उसमें एक स्त्री ग्यारह शवों पर खड़ी थी और वे शव एक नाव को शक्ल में बँधे हुए थे । सामने की ओर एक शव खड़ा हुआ बँधा था । वह एक छोटी बच्ची थी, ऐसे लगती थी, जैसे पुराने मिस्त्री नाविकों की नाव में सामने की ओर गिद्ध का सिर भुका हुआ सा बना रहता था ।

वह स्त्री शवनम थी । उसने चिल्ला कर पुकारा, 'यादव सिंह ! खबरदार ! उधर न जा ! उधर न जा ! मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी ।'

यादव सिंह ने देखा कि वे सारे शव खिलखिला कर हँसने लगे । वह भयानक हास्य मुनकर समुद्र ऊम चूम होने लगा । और फिर समुद्र बढ़ने लगा । देखते ही देखते लहरें इतनी बड़ीं कि वह दीवार, वहाँ खड़ी सुधा, सब गायब हो गये । शायद लहरों ने निगल लिया । लेकिन यादव सिंह खड़ा-खड़ा चिल्लाने लगा, मगर आवाज़ उसके गले से नहीं निकली...

यादवसिंह थरथरा कर जाग गया । उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था ।

दो दिन बीत गये ।

यादवसिंह ने सुधा से कहा, 'मैंने सरवटे साहब से किस्सा तो सुन लिया है ।'

सुधा मुस्कराई । कहा, 'मेरा खयाल है उन्हें इस बात से काफी धक्का लगा है । उन्होंने आपको पूरी बात सुनाई भी न होगी । यह भी कहा होगा कि यह सारा किस्सा भूँठा है । वह इसी बात को स्वीकार नहीं करना

चाहते कि मैं सुधा से मिलती-जुलती हूँ। और शादी के बाद ही मैंने यह समानता देखी। आप क्या समझते हैं। मैं उससे मिलती हूँ या नहीं।’

‘क्यों नहीं।’

सुधा खुश हुई।

उसने कहा, ‘आपको असली कहानी पता है?’

‘क्या?’

‘यही कि सुधा और लक्ष्मीधर एक दूसरे से प्रेम करते थे। वह मांथी जो माधवराव के साथ था और कोई नहीं, स्वयं सुधा ही मर्दाने लिवास में थी। हमारे यहाँ पुरखों के लिवास ज्यों के त्यों रखे हुए हैं। मैं आपको कभी दिखाऊँगी। अभी उनमें कुछ नहीं बिगड़ा है।’

‘आप कहती हैं कि वे प्रेम करते थे, फिर सुधा लक्ष्मीधर की हत्या कैसे कर सकती थी?’

‘वह और बात थी। विवाहित स्त्री को कर्त्तव्य और प्रेम दोनों को अलग-अलग करके देखना पड़ता है,’ सुधा ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा, ‘सुधा ने प्रेम जरूर किया होगा, लेकिन वह अपने को पापिन भी समझती होगी और इसीलिये उस एक क्षण में जब धर्म की भावना तीव्र रही होगी उसने उसकी हत्या कर दी होगी।’

‘भयानक!’ यादव सिंह ने कहा, ‘मुझे लगता है कि यह सब एक झूठ ही तो नहीं है?’

सुधा ने तिरस्कार से कहा, ‘नहीं यह सच है।’

‘क्यों?’

‘क्योंकि मैं इसे सच मानती हूँ।’

‘लेकिन क्या यही काफी है?’

‘तो बताइये। दुनिया में जो बहुत कुछ सच माना जाता है, वह आखिर और किस तरह! विश्वास ही से सब काम होता है।’

और उसकी आँखों में एक सुदूर से आती हुई चमक दिखाई देने लगी।

‘आपने लक्ष्मीधर की कविता सुनी है ?’

‘नहीं,’ यादवसिंह ने कहा, ‘मेरा कविता से बहुत कम संबंध है।’

इसी समय सरवटे आ गया।

‘तो मैं आपको आज लक्ष्मीधर की कविता सुना दूँगी।’ उस समय सुधा ने कहा।

‘मुधा !’ सरवटे ने कहा, ‘भगवान के लिये, नौकर सुनेंगे। धीरे बोलो !’

सुधा हँसी और उसके हास्य में व्यंग्य था। उसने कहा, ‘नौकर ! तुम समझते हो वे इस कहानी से अभी तक अज्ञान हैं ? कौन नहीं जानता यहाँ की पूरी बस्ती में ? उन्होंने क्या लक्ष्मीधर को इस घर के बाहर नहीं देखा है ? क्या उन्होंने उसके पाँवों की चाप को बड़े कमरे में नहीं सुना ? क्या वे नहीं जानते कि अगर मैं वहाँ न होऊँ तो तुम आसमानी कमरे में एक पल भी नहीं टिकते, तुम्हें इस कदर डर लगता है ?’

यादवसिंह को ध्यान आया। सचमुच सरवटे को वह जगह पसंद नहीं थी। वह वहाँ ठहरना अच्छा नहीं मानता था।

‘आसमानी कमरा,’ उसने कहा, ‘क्या लक्ष्मीधर वहाँ आता है ?’ अभी भी। मुझे बताइये न ? वहाँ क्या हुआ था।’

सरवटे ने उदास हँस कर बात टालने की कोशिश की।

उसने धीमे से कहा, ‘भाई ! जहाँ तक मैं समझता हूँ, वहाँ कुछ भी नहीं हुआ था।’

‘सच ?’ यादवसिंह ने पूछा।

‘यही तो खास बात है,’ सुधा ने कहा, ‘लोग नहीं जानते कि वहाँ हुआ क्या था। फिर भी उस कमरे में लोग डरते हैं। कहते हैं, आज तक मेरे सिवाय कोई उस कमरे में एक मिनट से ज्यादा बैठने की हिम्मत नहीं कर सका। पूछिये। आप बैठ सकते हैं ?’ उसने अपने पति की ओर इशारा किया।

‘आपने वहाँ कोई अजीब चीज देखी है?’ यादवसिंह ने उस समय गोविंदराव से पूछा।

उसने सिर हिला कर कहा, ‘नहीं।’

‘हो सकता है,’ सुधा ने उड़ती हुई हँसी हँस कर कहा, ‘आपने नहीं देखी हो, क्योंकि वहाँ एक मिनट से ज्यादा कभी अकेले बैठे भी तो नहीं। मैं तो घंटों बैठी हूँ। लेकिन अगर वहाँ कभी कुछ नहीं हुआ तो उस कमरे से लोग डरने क्यों लगे। उसका नाम ऐसा क्यों पड़ गया?’

और तब सुधा ने कहा, ‘अगर नहीं ही हुआ है तो मुझे लगता है...’ वह सहसा रुक गई।

‘क्या लगता है?’ यादवसिंह ने पूछा।

उसने जैसे सुना नहीं। वह शून्य में देख रही थी।

यादवसिंह ने अपना प्रश्न दुहराया। तब सुधा चौंकी। उसने कहा ‘आपने कुछ पूछा?’

‘आप कुछ कहते-कहते रुक गई थीं।’

‘हाँ,’ सुधा ने कहा, ‘मुझे लगता है कि अब कुछ जरूर होने वाला है।’

उसके स्वर में ऐसी भयावह छाया थी कि सरवटे जैसे काँप गया।

सुधा ने सहसा से कहा, ‘आप कुँवर साहब! मेरी तस्वीर उसी कमरे में क्यों नहीं बनाते?’

सरवटे सहसा ऐसे लगा जैसे विरोध करेगा। किंतु वह नहीं बोला, चुप रह गया। कहना चाह कर भी जैसे पी गया। उसके चेहरे पर पीलापन सा छा गया था।

यादव सिंह ने कहा, ‘गोविंदराव जी! इसमें परेशान होने की ऐसी क्या बात है?’

सरवटे यह सुनकर चला गया।

‘आपने!’ यादव सिंह ने सुधा से कहा, ‘सरवटे साहब को शायद नाराज कर दिया है? आप शायद भूतों में विश्वास नहीं करती हों,

नेकिन वे करते हैं। आप को उनके विश्वासों का ध्यान रखना तो बाहिये ही। मैं कुछ गलत तो नहीं कहता ?

‘भूत !’ सुधा ने कहा, ‘आप कैसे जानते हैं मैं उनमें विश्वास नहीं करती ?’ उसका उत्तर सुन कर यादव सिंह थोड़ा अचकचा गया।

‘आइये’, उसने रुक कर यादव सिंह से कहा, ‘मैं आपको सबूत दूँ कि लक्ष्मीधर हुआ था या नहीं ! मेरे साथ आसमानी कमरे में आइये।’

आसमानी कमरे में सुधा ने उसी लहरों जैसी मेज़ के दराज़ खोल कर कागज़ निकाले। वे हस्तलिखित थे। लक्ष्मीधर की कविता उनमें लखी हुई थी। लेकिन यादव सिंह उस कमरे को चाहता था। उसने कहा, ‘मैं जरूर आपकी तस्वीर इसी कमरे में बनाऊँगा।’

सुधा ने कहा, ‘ये हैं उसकी कविताएँ !’

कह कर उसने कागज़ खोले।

फिर वह पढ़ने लगी। वे कवित्त थे, सवैये थे, और प्रेम से सराबोर थे जो राधाकृष्ण से प्रति लिखे गये थे। रीति कालीन कविता की वासना और रति प्रधानता उनमें खूब थी, लेकिन सुधा उन्हें बिना शर्माए पढ़ती चली जा रही थी और ऐसा लगता था जैसे उस पर एक विचित्र सा जादू छा गया था।

जिस ढंग से वह मेज़ से टिक कर खड़ी थी यादवसिंह को बहुत पसंद आया और उसने निश्चय किया कि वह उसका चित्र ऐसी ही मुद्रा में बनायेगा, ताकि उसके तन, मन, प्राण की सारी झलक चित्र में ऐसे उतर आये, जैसे इटली के चित्रकार अपने कैनवैस पर उतार दिया करते थे। वह एकटक उसे सतृष्ण नेत्रों से देखता रहा। वह ऐसे पढ़ रही थी जैसे वे प्रेम की कविताएँ उसी के प्रति लिखी गई थीं। उनमें जो राधा थी, वह स्वयं ही थी। उसके विलास की गाथा ही जैसे उन कागज़ों में भरी पड़ी थी, और विपरीत का वर्णन भी वह ऐसे सुना गई, जैसे उसे सुनाने में भी उसे किसी प्रकार का भी कोई संकोच नहीं था।

यादवसिंह कविता नहीं सुनाता था, उसे देख रहा था और उसकी दृष्टि उसके यौवन से गदराते अंगों को छू-छू कर एक ऐसे दाह से भरी जा रही थी कि उसे एक नशा सा चढ़ रहा था ।

वह अपनी उलझन में पुराने ज़माने के कपड़े और उसी पुराने ढंग से पहनती थी कि उसकी झलक देखकर इतिहास लौटता हुआ दिखाई दे रहा था ।

यादवसिंह ने सोचा कैसी है यह स्त्री ! क्यों यह ऐसा अनुभव करती है कि यही वह सुधा है । क्योंकि वह प्रेम करके पतिपरायणा बन कर अपने पति की लाज के लिये अपने प्रेमी को मार बैठी थी, और यह उस अव्यक्त कवि से अब प्रेम करके उसकी उस दारुण अतृप्ति का बदला चुकाना चाहती है ।

कैसी है यह वासना जो स्त्री की मर्यादा को पार कर जाना चाहती है ।

वह खड़ी थी ।

आँखों में एक दूर का स्वप्न था । उसके हाथ में कागज़ था । उसका भव्य गोरा रंग उसके पीछे की मेज़ के नीले रंग के सामने ऐसा लगता था, जैसे समुद्र की तरंगों ने मोहिनी को निकाल कर बाहर फेंक दिया है । वह राधा बन गई थी ! वह शोभा की खान, निधड़क अपने कुचाँ के नरव दत्त के संबंध का कवित्त पढ़ रही थी !

कैसी थी यह वासना !

उस पुराने समय के वस्त्र धारण करने में वह और भी विचित्र लगती थी । इस समय आवेश में उसका अंचल सरक गया था और तीस एक वर्ष की उस स्त्री का वह उभरा यौवन इस समय कसी चोली में से झलकने लगा था । उसकी लाँगदार धोती की रेशमी सुनहली लपेट में से उसकी जॉर्ज अपनी झलक मार रही थीं और यादव सिंह जो कि स्त्री से अब तक दूर रहा था, उसे लगा वह सब अद्भुत था ।

वह गौर से देखने लगा और देखते-देखते उसे लगा कि वह सुधा नहीं है। वह शबनम ही है। वह शबनम ही है, जो रूप बदल कर सामने आई है। ठीक ही तो है। पुरानी सुधा के मरने के बाद यह शबनम पैदा हुई थी। उसने उस जीवन की अतृप्ति को शबनम बन कर पूरा करने की कोशिश की थी। लेकिन जीवन भर उसे प्रेम नहीं मिला। उसे केवल वासना के भूखे मिले। उसने फिर जनम लिया है। वह फिर सुधा बनी है। और अब वह किसी से प्रेम नहीं करती। केवल लक्ष्मी-धर की आत्मा का चाहती है।

क्या यह हो सकता है !

‘नहीं,’ यादव सिंह ने सोचा, ‘क्योंकि अगर शबनम ही सुधा होती, तो शबनम फिर यादव सिंह को सुधा की ओर बढ़ते देखकर रोकती क्यों ? अवश्य ही दोनों अलग-अलग हैं। या शबनम अपने एक पुराने रूप को धारण करके आती है कि मुझे इस जीवन में शान्ति से रहने दो। मुझे परेशान मत करो !’

‘नहीं,’ यादव सिंह ने फिर सोचा, ‘एक जन्म के बाद पुराना रूप नहीं रह सकता। दोनों अलग हैं। शबनम मर चुकी है। सुधा जीवित है।’ इसके बाद सुधा ने ले जाकर वे पुराने कपड़े दिखाये।

कुछ दिन और बीत गये और एक दिन अचानक ही कमल सिंह आ पहुँचा। सुधा उसके प्रति भी वैसी थी, जैसा वह यादव सिंह के प्रति थी। यादव सिंह को यहाँ देखकर कमल सिंह ने बताया कि वह बहुत उजाड़ सा महसूस करता है। उसके यहाँ सब कुछ होते हुये भी बहुत सूनापन उसे घेरे रहता है, उसी को भूलने के लिये वह यहाँ आ गया है।

यादव सिंह ने कहा, ‘क्या तुम समझते हो कि यह सब इसी लिये नहीं है कि तुम शबनम की जायदाद पर हाथ डाल रहे हो ?’

कमल सिंह ने कुछ नहीं कहा। केवल उसकी आँखों की छाया और गहरी हो गई जिसे यादव सिंह नहीं पढ़ सका।

दूसरे दिन यादव सिंह ने चित्र बनाते समय पूछा, 'क्या आप बता सकती हैं कि सुधा ने ही लक्ष्मीधर की हत्या की थी !'

‘निश्चय !’

‘कैसे ?’

‘आप ने शायद प्रेम नहीं किया,’ उसने कहा और मुँह फेर लिया। लेकिन यादव सिंह ने देख ही लिया कि उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे।

शाम को यादव सिंह और कमल सिंह खड़े बातें करते हुए देख रहे थे कि सरवटे सीढ़ी चढ़ कर उनके पास आ रहा था।

‘चलिये घूमने चलें,’ उसने कहा।

नीचे उतर कर आये ता देखा कि पुराने मर्दाने लिबास में सुधा गाड़ी के साथ खड़ी थी। और कोई न था। सरवटे ने देखा तो उसके मुँह से जैसे कराह सी निकल गई।

इसके बाद क्या हुआ क्या नहीं हुआ कुछ भी पता नहीं चल सका। क्योंकि सरवटे कूद कर गाड़ी में बैठ गया। उन दोनों को भी चढ़ना पड़ा। सुधा ने गाड़ी को ढाल पर बहुत काफी तेज़ रफ्तार से चला दिया।

‘आप कहाँ गये थे !’ सरवटे की ओर देख कर यादवसिंह ने पूछा।

उसने कहा, ‘मुझे आज कलेक्टर साहब से काम था, मैं वहीं चला गया था।’

हठात् गाड़ी ज़रा उछली।

‘धीरे चलाओ,’ सरवटे चिल्लाया, ‘कहाँ चल रही हों। जानती हों यह ढाल कितना खतरनाक है। घोड़े फिसल गये तो !’

सुधा ज़ोर से हँसी, उसने कहा, ‘वहीं जहाँ एक दिन तुम्हारे लिये मैंने लक्ष्मीधर को मारा था।’

उसके हास्य में एक ऐसा डरावनापन था कि कमल सिंह थरा गया।

शबनम है ।’

‘शबनम !!’ कमल सिंह के रोंगटे खड़े हो गये ।

यादव सिंह ने खड़े होकर चलती गाड़ी में ही सुधा के कंधे पकड़ लिये और जोर से पुकारा, ‘शबनम ! मैं आ गया हूँ, मैं आ गया हूँ ।’

लेकिन सुधा ने चाबुक जोर से मार कर कहा, ‘तुम आ गये लक्ष्मीधर ! तुम सचमुच आ गये । तुमने मुझसे यही तो कहा था न कि तुम मुझे ऐसी ही तरह किसी दिन तूफानी रफ्तार में मिलोगे ?’

कमल सिंह ने चलती गाड़ी में खड़े होकर यादव सिंह को पकड़ लिया और कहा, ‘नहीं-नहीं यादव सिंह ! वह शबनम नहीं है, नहीं, वह शबनम नहीं है । तुम धोखे में हो !’

सरवटे ने जोर से सुधा के मुँह पर चोंथा मारा । सुधा जोर से हँसी । सरवटे की आँखों में लहू उतर आया था । वह उसका गला घोटने लगा । लेकिन तभी यादव सिंह उस पर दूट पड़ा । कमल सिंह के मुँह से अचानक एक भयानक चीख निकली । घोड़े मोड़ पर मुड़े नहीं थे । अथाह गड़ढे के ऊपर गाड़ी हवा में भूल गई थी ।

कुछ ही देर में वहाँ अखण्ड शांति छा गई ।

सुबह हो गई थी ।

‘पूरी रात बात करते हुए निकल गई,’ खांडेकर ने कहा ।

‘कमाल हो गया यार ! सुरेश्वर ने कहा, ‘पता भी नहीं चला ।’

वे लोग कमरे के बाहर निकले । अभी दो कदम ही चले थे कि चारों ओर घना जंगल दिखाई देने लगा । बीच में यह एक खंडहर था, जिसके एक साबुत कमरे में वे लोग पूरी रात बैठे रहे थे ।

‘मगर,’ खांडेकर ने कहा ‘हम तो गाँव में आये थे न ?’

‘यही तो मैं भी सोच रहा हूँ ।’

‘अजीब उलझन है,’ धीरूमल ने कहा, ‘चलो ज़रा कमरा तो देखें ।’

वे फिर भीतर आ गये । मगर कमरे में बस वही एक दरवाज़ा था और कोई रास्ता नहीं था ।

उनके मुख पर अपार विस्मय था ।

सुरेश्वर ने कहा, 'आखिर कोई हमें दरी और लालटेन भी तो दे गया था । वह बिचारा लौटेगा तो क्या कहेगा ? शायद हमी से रात को देखने में ग़लती हुई ।'

'यार हवा तो इतनी तेज़ थी कि आँखें ठहरती न थीं,' मोहन ने कहा ।

उसी समय पथ पर दूर छः आदमी दिखाई दिये । वे इनकी ओर आश्चर्य से देखते रहे और आपस में कुछ बातें करते रहे । फिर वे कुछ सलाह करके पास आये । उनके मुख पर अपार विस्मय था ।

एक ने कहा, 'बाबू ? आप रात भर वहीं रहे ! यह जगह तो बड़ी बीहड़ है । यह भूतों की सराय । इसके पीछे आप !'

चारों ने एक दूसरे का मुँह देखा ।

'हाँ,' खाँडेकर ने दवे हुये स्वर से कहा ।

उस आदमी ने कहा, 'आपको यहाँ कोई बूढ़ा मशाल लिये मिला था ?'

'मिला था,' सुरेश्वर ने कहा, 'वह अपने को गाँव का चाँकी-दार बताता था । उसके साथ कुछ और लोग भी थे । वे हमको भूतों से बचाने के लिये यहाँ पहुँचा गये थे । यह देखो उन्होंने हमें दरी और लालटेन दी । सारी रात हमने कहानियों में ही गुज़ार दी । लेकिन यहाँ गाँव नज़र नहीं आता ।'

'बड़े भाग !' उस आदमी ने कहा, 'आप भूतों के चक्कर में नहीं फँसे । कल शुक्रवार था न ? यहाँ जिन्नों की महफिल जुटती है ।'

चारों के रोंगटे खड़े हो गये ।

'जिन्नों की !' मोहन ने कहा ।

‘हाँ बाबू’, उस आदमी ने कहा, ‘यह गाँव बड़ा ही शानदार था। मगर एक बार यहाँ से लोदियों की फौज गुजर गई, जिसने यहाँ के सारे ही सैयदाँ का कल्ल कर दिया। बहुत मुश्किल से कुछ लोग बचे जो सदियों यहाँ रहे। लेकिन दस बरस हुए बगावत के जुर्म में अँगरेजों ने उन्हें मशीनगनों से मारकर भिद्य दिया।’ फिर उसी आदमी ने कहा, ‘पूरा मजमा सा आकर जुड़ता है, जिसे इंसान देख ले तो पागल हो जाये। वह उस तरफ सराय में ठहरता है। हम मुनते आ रहे हैं कि एक बूढ़ा चोकीदार उस दिन लोगों को हिफाजत से वहाँ से हटा देता है। जिन भूतों की तरह दुख नहीं देते। हर शुक्रवार को यहाँ भीड़ जुड़ती है जिन्नों की। वे गाते-बजाते हैं।’

‘हिश!’ सुरेश्वर ने कहा, ‘हमने तो किसी का गाना-बजाना नहीं सुना।’ लेकिन वह डर ज़रूर गया था।

‘नहीं सुना हांगा,’ उस आदमी ने अपने साथियों की तरफ देख कर कहा, ‘क्योंकि रात वे आपकी कहानियाँ मुनते रहे होंगे। कहने हैं यहाँ पहले बड़े कहानी सुनने में माहिर लोग रहा करते थे, जो कि बहुत ही नेक और रहमदिल थे...!’ उसने रुक कर कहा, ‘अब आप चले जाइये बाबू लोग। भूत भी होते हैं, और जिन भी। आप अभी जानते नहीं हैं...’

उस वक्त तक वे सब लोग कमरे के बीच में आ गये थे। एक ने दरी लपेट ली, दूसरे ने लालटेन उठा ली। बाकी के चारों ओर आदमी इधर-उधर देख कर बोले, ‘अब यहाँ कुछ नहीं है। बाबू जी चलिये।’

खांडेकर, सुरेश्वर, मोहन और धीरूमल धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर बढ़े। जब वे बाहर आ गये तो चौखट पर पाँव रखे ही मोहन मुड़ा और सबने देखा, कोठरी खाली थी। वहाँ कोई भी नहीं था, न वहाँ कोई सामान ही था !

सबने आँख फाड़कर देखा। क्या जमीन निगल गई। या वे हवा हो गये। अभी वे निश्चित भी नहीं कर सके थे कि वही रात के

चौकीदार वाला डरावना अट्टहास गूँज उठा । चारों सर पर पाँव रखकर भाग निकले । जब उन्होंने होश सँभाला तो पहले एक दूसरे की दाद सलिये दी कि जब पहले वे लोग बुढ़े को डकैत बता रहे थे तब अँगरेजी में बातें कर रहे थे । अगर हिन्दी में बात की होती तो जिन समझ गया होता । और तब वह रईस जिन बैठ कर शायद कहानी नहीं सुनता ।...

